"सुधी सुधा निधि" कृत

"रुक्मिणी हरण महाकाव्य"

का समीक्षात्मक अध्ययन

शोध-प्रबन्ध

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत
पी- एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
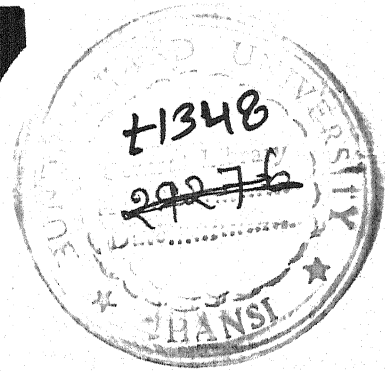
शोध निर्देशक-
डा० कैलाश नाथ द्विवेदी
प्राचार्य
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, कोंच [जालौन]

शोध छात्रा-
अमिता कुशवाहा

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती अनिता कुशवाहा ने मेरे निर्देशन में दो सौ दिन से अधिक नियमानुसार कार्यरत रहकर संस्कृत विषय में "सुधी सुधा निधि" कृत *"रुक्मिणीहरण महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन"* शीर्षक विषय पर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी की पी0 एच0 डी0 उपाधि हेतु अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है।

इसके पूर्व इस विषय पर अभी तक कोई शोधकार्य नहीं हुआ है। इनकी यह शोधकृति सर्वथा मौलिक है।

दिनांक - 20-2-97

(डा0 कैलाश नाथ द्विवेदी

शोध निर्देशक/प्राचार्य

मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय

कोंच (जालौन)

- प्राक्कथन -

संस्कृत साहित्याकांश में समय-समय पर अनेकों दैदीप्यमान नक्षत्रों का प्रदुर्भाव आदिकाल से अब तक होता रहा है।

साहित्य के इस अगाध सागर में कविवर "सुश्री सुधा-निधि कृत रुक्मिणीहरणम् महाकाव्य" नामक रचना का विशेष महत्व रहा है।

मैंने अपने शोध प्रबन्ध में प्राकृतिक वैभव से परिपूर्ण उस समय के जीवन के विविध पक्षों से समलंकृत कवि के इस महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता के पश्चात् जब मैं सिंहावलोकन करती हूँ, तो पाती हूँ कि इस कार्य को पूर्णाहुति तक पहुँचाने में अनेकानेक विद्वानों, स्वजनों, परिजनों, मित्रों और परिवारीय सदस्यों के अतिरिक्त न जाने कितने जाने-अनजाने सज्जनों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग, मार्ग निर्देशन और दिशा निर्देशन सन्निहित रहा है। मैं उन सभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना नैतिक कर्तव्य समझती हूँ।

सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक डा० कैलाश नाथ द्विवेदी, प्राचार्य, मथुरा प्रसाद महाविघालय, कोंच के प्रति

अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके कुशल एवं विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में यह शोध कार्य सम्पन्न हुआ।

अपने आदर्श एवं पिता तुल्य माननीय श्री पंडित गिरिजा कुमार दुबे जी (आ० चाचा जी) की मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा और निरन्तर गतिशील बने रहने के आदेश के कारण ही मैं यह कार्य सुगमता से कर पायी हूँ। उनके आशीर्वाद के बिना यह कार्य मेरे लिये दुरुह था।

आदरणीय मम्मी (श्रीमती करुणा सिंह) और पूज्य पापा (श्री कीरत सिंह सेंगर एडवोकेट) के प्रति मैं आत्मिक श्रृद्धा और सम्मान ज्ञापित कर उनके अतुलनीय सहयोग को छोटा नहीं करना चाहती हूँ। मेरी सफलता के सदैव निमित्त बनते रहने वाले मेरे माता-पिता ने मुझे पारिवारिक दायित्वों से पूर्णतः मुक्त रखकर मुझे शोधकार्य करने के पूरे अवसर प्रदान किये।

अपने अग्रज डा० कमलेश शर्मा एवं श्री ज्ञानसागर रिछारिया को मैं इस अवसर पर कैसे भूल सकती हूँ। उनका मार्गदर्शन मुझे सदैव उत्साहित करता रहा।

अन्त में, मैं अपने महाविद्यालय परिवार के शैक्षणिक एवं लिपिक संवर्ग के सभी सदस्यों का हार्दिक धन्यवाद करना चाहूँगी, इनके सहयोग और सौहार्द के बिना यह शोधकार्य करना असंभव प्रतीत होता था।

मैं उन जाने-अनजाने सभी विद्वानों, सुधीजनों और सज्जनों के प्रति अपना सम्मान् और साधुवाद ज्ञापित करती हूँ,

जिनके प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग और प्रेरणा से यह शोध प्रबन्ध पूर्णता प्राप्त कर नवीन कलेवर में आपके सम्मुख आ सका है।

अमिता सिंह

(अमिता)

कुशवाहा)

विषय सूची

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

शोध विषयक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि --

संस्कृत साहित्य की अत्यन्त प्राचीन तथा लम्बी परम्परा है। ऋग्वेद के उत्ताल हिम श्रृंगो से निकलती हुई साहित्य की अजस्त्र धारा उपनिषदों, सूत्र ग्रंथों, महाकाव्यों, पुराणों, स्मृतियों की विस्तृत समतल घाटी में बहती हुई, तटवर्ती नगरों, ग्रामों तथा मैदानों को आप्लावित करती हुई, आधुनिक युग के बहुआयामी डेल्टा क्षेत्र में आकर, नाना धाराओं में विभाजित होती हुई, विश्व सागर के महासागर में समाहित हो रही है। इस लम्बे काल अन्तराल में सृजित साहित्यिक कृतियाँ प्रसिद्ध भी हैं तथा उपलब्ध भी हैं। [१] वर्तमान काल में भी संस्कृत भाषा में कई पत्रिकायें निकल रहीं हैं, सामयिक समस्याओं पर संस्कृत में लेख लिखे जाते हैं तथा कवितायें भी लिखी जाती हैं। [२]

इतने पर भी यह स्वीकारने में संकोच नहीं किया जा सकता कि संस्कृत के विस्तृत साहित्य का काल क्रमानुसार इतिहास लेखांकन भारतीय लेखनी को रास नहीं आया। किन्तु यह निष्कर्ष निकालना भी उचित नहीं होगा कि भारतीयों ने संस्कृत साहित्य के इतिहास का कोई लेखक उत्पन्न नहीं किया। [३] संस्कृत साहित्य के योरोपीय इतिहास वेत्ताओं को ऐसा भ्रम योरोपीय इतिहासांकन पद्धति तथा भारतीय इतिहासांकन पद्धति में मौलिक अन्तर के कारण उत्पन्न हुआ। कालक्रम, घटनास्थल आदि गौण हैं। इसके विपरीत योरोपीय पद्धति कालक्रम को वरीयता देती है।

१- भाण्डारकरः अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० सं० - ७०

२- विंटरनित्ज : हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग (प्रथम), पृ० सं० - ४५

३- कीथ : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० सं० - ४६

संस्कृत साहित्य के उपलब्ध ग्रन्थों में नारी पुरूष के शाश्वत आकर्षण जनित नायक-नायिकाओं का पारस्परिक प्रेम व्यापार का उन्मुक्त विवरण मिलता है। ऋग्वेद का ऊषा सूक्त विश्व प्रेम साहित्य की अमूल्य निधि है। यम-यमी, ब्रह्मा-सावित्री, दुष्यंत-शकुन्तला, नल-दमयंती, पुरंजन-पुरंजनी, राम-सीता-रावण त्रिकोण, राधा-कृष्ण आदि के प्रेम प्रसंग संस्कृत महाकाव्यों, पुराणों के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। प्रेमी द्वारा प्रेमिकाओं के हरण का रोमांचक विवरण भी कवि हृदय को उद्वेलित करता रहा है, भीष्म द्वारा अम्बादि का हरण, कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण, अर्जुन द्वारा सुभद्रा हरण के विवरण संस्कृत साहित्य की विषय-वस्तु रहे हैं, चन्द्रगुप्त-ध्रुवस्वामिनि प्रकरण ने एक नई भूमि को तोड़ा है, संस्कृतेत्तर साहित्य में पृथ्वीराज-संयोगिता, आल्हा-सुनवाँ, पद्मावत के भीमसेन पद्मावती-नागवती, आदि प्रकरण भी प्रसिद्ध हैं। भारत के बाहर यूनान में होमर के महाकाव्य इलियड् में वर्णित पेरिस-हेलन, ईरान के लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, पंजाब के सोहनी-महिवाल के प्रकरण साहित्यकारों को प्रेरणा देते रहे हैं।

कृष्ण रुक्मिणी प्रकरण ईसवी शती के पूर्व से आधुनिक काल तक साहित्यकारों को अनुप्राणित करता आया है, निम्नलिखित सूची इसका प्रमाण है :-

	काव्य	कवि	काल
१-	जाम्बवती जयम्	पाणिनी	८००-६०० ईसा पूर्व
२-	स्वर्गारोहणम्	कात्यायन	४०० ”
३-	किरातार्जुनीयम्	भारवि	५३०-६५० ई०
४-	शिशुपाल वधम्	माघ	६७५-८०० ई०
५-	कीचक वधम्	नीतिवर्मा	६ वीं शती ई०
६-	युधिष्ठर विजयम्	वासुदेव	६०० ”

७-	हरिविलास	लोलिम्बराज	१०५० "
८-	गोविन्दभिषेक	कृष्णलीलाशुक	१२ वीं शती ई०
९-	नैषधीयचरितम्	श्री हर्ष	१२ वीं शती ई०
१०-	पारिजातहरणम्	कवि कर्णपूर	११८५ "
११-	यमकभारतम्	माधवाचार्य	१२२५ "
१२-	बालभारतम्	अमरचन्द्र	१२६० "
१३-	ऊषाहरणम्	त्रिविक्रम	१२६० "
१४-	पारिजातहरणम्	नारायण	१२८० "
१५-	रुक्मिणी कल्याणम्	विद्या चक्रवर्ती	१३०० ई०
१६-	बालभारतम्	अगस्तय	१३०० "
१७-	यादवाभ्युदयम्	वेंकटनाथ	१३०० "
१८-	युधिष्ठिरविजयम्	वासुदेव	१३०० "
१९-	नलाभ्युदय	बाण	अज्ञात
२०-	कृष्णविलास	सुकुमार	१४२५ "
२१-	कृष्णविजय	शंकर	१४३० "
२२-	भरतचरित	कृष्णाचार्य	१४३० "
२३-	भारतसंग्रह	रामवर्मा	१४३० "
२४-	पाण्डवाभ्युदय	शिवसूर्य	१४५० "
२५-	नलाभ्युदय	रघुनाथ	१६०० ई०
२६-	पारिजातहरणम्	--------	------
२७-	रुक्मिणी कल्याण	राजचूणामणि	१६२० ई०
२८-	प्रद्युम्नोत्तरचरित	मृत्युञ्जय दीक्षित	१६२० ई०

२९- कृष्णलीलामृत	लक्ष्मण सूरि	१८८०. ई०
३०- नलोदय काव्यम्	कालिदास	१९०० ई०
३१- श्री रासमहाकाव्यम्	वटुकनाथ	१९३० ई०
३२- पारिजातरणम्	उमापति शर्मा, द्विवेदी	२० वीं शती पू०
३३- रुक्मिणीहरणम्	काशीनाथ	२० वीं शती पू०

उपर्युक्त काव्य सूची से स्पष्ट है कि इस काव्य श्रृंखला में हमारे महाकाव्य के चरित्र नायक श्रीकृष्ण ही प्रमुख विषय रहे हैं तथा प्रस्तुत विषय जिसे श्री सुधानिधि जी ने अपनाया वह भी अछूता नहीं था।

महाकाव्य के समीक्षण सिद्धान्त

लक्ष्य एवं लक्षण--

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट हो गया है कि आरम्भिक वैदिक कविताओं से ही अभिव्यक्ति में विशेषता रही थी। वे सामान्य बोलचाल की अपेक्षा कुछ विशेष भाव संप्रेषणीयता प्रकट करते हुये हैं। जैसे-जैसे अभिव्यक्ति की यह शैली विकसित और पल्लवित होती गई, वैसे-वैसे समाज में उन काव्यों के अनुशीलन करने वालों का एक वर्ग इस अलौकिक अभिव्यक्ति की समीक्षा के सिद्धान्त बनाता गया। राजशेखर ने काव्य मीमांसा में इस सम्बन्ध में अत्यन्त रोचक विवरण दिया है। इसके ऐतिहासिकता की विवेचना करने वाले भले ही इसमें अरूचि प्रदर्शित करें। [४] किन्तु उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि यह अलौकिक काव्य के समीक्षकों की प्रथम सूची है।

राजशेखर कहते है कि श्रीकण्ठ शिव काव्य विद्या के प्रथम समालोचक हुए। उन्होंने इसकी शिक्षा परमेष्ठी, वैकुण्ठ आदि ६४ शिष्यों को दी। उनके प्रथम शिष्य स्वयम्भू ब्रह्मा ने अपने मानस संकल्प से उत्पन्न शिष्यों को उस विद्या की शिक्षा दी। उन्हीं में काव्य पुरुष भी था। जिसे ब्रह्मा ने तीनो लोकों में इसके प्रचारार्थ भेजा। उसने इस विद्या को १८ भागों में विभक्त कर सहस्त्राक्ष आदि शिष्यों को दिया। प्रत्येक ने इस विद्या के एक-एक अधिकरणों में विशेषज्ञ बनकर पृथक्-पृथक् ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार सहस्त्राक्ष ने कवि रहस्य, मुक्तिगर्भ ने औतिक्त, सुवर्णनाम ने रीति, नचिकेता ने आनुप्रासिक, यम ने यमक शास्त्र, चित्रांङ्गद ने चित्र काव्य शास्त्र, शेष ने शब्द श्लेष, पुलस्तय ने वास्तव, औपकायन ने उपमा, पाराशर ने अतिश्योक्ति, उतथ्य ने अर्थश्लेष, कुबेर ने उभयालंकार,

४- काव्य मीमांसा- केदारनाथ सारस्वत कृत भूमिका

कामदेव ने वैनोदिक, भरत ने रूपक, नन्दिकेश्वर ने रस, धिषण ने दोष, उपमन्यु ने गुण, कुचुमार ने औपनिषदिक शास्त्र रचा। [५]

सुशील कुमार डे [६] लिखते हैं कि "यह सम्भव है कि इस अपूर्व विवरण में सुस्पष्ट पौराणिक परिवेश के अतिरिक्त एक प्रचलित परम्परा अन्तर्निहित है जिसमें विस्मृत अतीत के काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रर्वतकों की वास्तविक सत्ता उपलक्षित होती है। उनमें से कुछ एक नाम तो अब भी सुपरचित हैं, किन्तु उनकी अधिकतर कृतियाँ स्पष्टतः लुप्त हो चुकीं हैं। जैसे-कामसूत्र के रचयिता ने (१ ।१। १३,१७) में सुवर्णनाम एवं कुचुमार का आदर के साथ उल्लेख किया हैं। [७]

५- अथातः : काव्यं मीमांसियियामहे यथोपदिदेश श्रीकण्ठाः परमेष्ठिः वैकुण्ठादिभ्यश्चतुः षष्ट्ये शिष्येभ्यः। सोऽपि भगवान् स्दयंभू रिच्छाजन्यभ्यः स्वान्तेवासिभ्यः। तेषु सारस्वतेयो वृन्दीय सामपि वन्द्यः काव्य पुरूष आसीत्-------- सोदष्टा दशाधिकरणीं दिव्येभयः काव्य विद्यास्नातकेभ्यः सप्रञ्चं प्रोवाच। तत्र कविरहस्यं सहस्त्राक्षः साम्नासीत् औक्तिकमुक्ति गर्भः, रीतिनिर्णयं सुवर्णनामः, आनुप्रासिकंप्रचेता, यमोयमकानि, चित्र चित्रांगदः, शब्दश्लेषं शेषः, वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायनः, अतिशयं पाराशरः, अर्थश्लेषमुतथ्यः, उभयालंकारिकं कुबेरः, वैनोदिक कामदेवः, रूपकनिरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः, दोषाधिकरणं धिषणः, गुणौपादानिकमपमन्यः, औपनिषदिकं कुचुमारः, -----इति ततस्ये पृथक-पृथक स्वशास्याणि विरचयां चक्रुः। (काव्यमीमांसा, प्रथम अध्याय)

६- History of Sanskrit Poetics, Part I, P.3. Calcutta - 1923

७- इस विषय पर देखें- Journal of the department of letters IV, P-95, Calcutta University

यद्यपि ऋग्वेद में उपमा रूपक अतिशयोक्ति आदि अंलकारों के उदाहरण मिलते हैं। अन्य अलंकार भी खोजे गये हैं। [८] किन्तु इसके पूर्णरूप से धार्मिक ग्रन्थ की प्रतिष्ठा के कारण इसकी समालोचना साहित्य शास्त्रीय समालोचकों ने नहीं की, प्रसंगतः यास्क ने तुलर्नाथक निपातों के विवेचन में प्राचीन परिभाषा उद्धृत की है। [९] यह परिभाषा निश्चित रूप से काव्य प्रकाश की परिभाषा से मेल खाती है एवं सिद्ध करती है कि समालोचना के सिद्धान्त निश्चित रूप से ईसा पूर्व की प्रथम सहस्त्राब्दी में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। [१०]

तथापि प्राप्त प्रमाणिक ग्रन्थों के आधार पर अलौकिक कवि कर्म के प्रथम-समालोचक भामह अपने काव्यालंकार ग्रन्थ के साथ माने जाते हैं। ये काव्य के अलंकारात्मक सौन्दर्य के व्याख्याता थे एवं अलंकार सिद्धान्त के प्रवर्तक न होते हुए भी प्रतिष्ठित हुए। इसके पश्चात कालिदास, अश्वघोष, भारवि आदि के महाकाव्य समालोचकों के लक्ष्यग्रन्थों के रूप में प्रस्तुत हुए तथा काव्यशास्त्रीय विवेचना ने अनवरत विकास किया।

वस्तुतः महाकवि स्वतंत्र होता है। यह आवश्यक नहीं कि पूर्ववर्ती महाकवियों के रचनाओं को लक्ष्य बनाकर जिन सिद्धान्तों को समीक्षकों ने काव्य रचयिताओं के लिए निर्धारित कर रखा है वे केवल अभ्यासार्थियों के ही काम आते हैं। महाकविगण अपने निसर्ग कवित्व के कारण नई शैलियों को जन्म देते रहे हैं एवं परिवर्ती समीक्षक उनकी कृतियों को लक्ष्य बनाकर नये समीक्षा सिद्धान्त बनाते रहे हैं।

८- दृष्टव्य ऋग्वेदेऽलंकाराः ग्रन्थ

९- अर्थात उपमा यद्अतत् तत्सदृशं इति गार्ग्यः। निरुक्त ३/१३

१०- दृष्टव्य Some concept of the Alankarshastra (V. Raghwan, Adyar, 1942)

अतः काव्य समीक्षा के सिद्धान्तों के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा स्पष्ट कर देना आवश्यक है क्योंकि हमारा समीक्ष्यमाण ग्रन्थ २०वीं शती का है। अतः संस्कृत महाकाव्य समीक्षा के आधुनिकतम आचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का अनुसरण करना अनिवार्य होगा।

समीक्षाशास्त्र का विकास :- भरत से जगन्नाथ तक

ऋग्वेद ग्रन्थों में प्राप्त उपमादि अलंकार विषयक वाक्यों को प्रमाण नहीं बनाया जा सका (११) किन्तु राजशेखर (१२) भरत (१३) आदि द्वारा लिखे गये ग्रन्थों में शास्त्रों को समीक्षाशास्त्रों को आधार या निर्देशक स्वीकार किया गया।

शब्दार्थ के द्वादश सम्बन्धः-

कालिदासादि के ग्रन्थों में समीक्षकों को शब्दार्थ में कुछ विशेष सम्बन्ध दृष्टिगोचर हुए उन्हीं के आधार पर एक व्यापक नामकरण किया गया- साहित्य। वे सम्बन्ध भोज ने इस प्रकार लिखे--

---

११- ईयुषी रागमुपमा शाश्वती नाम् ।। ऋ० १/११/५५ तदप्युपमास्ति।।
शतपथ ब्रा० १२/५/१/५

१२- शास्त्रपूर्वक त्वात् काव्यानां पूर्व शास्त्रेष्वभि निविशेत्।
न हय प्रवर्तित प्रदीपास्ते तन्त्वार्थ सार्थ मध्यक्षयन्ति।। (काव्य मीमांसा, द्वितीय अध्याय)

१३- जग्राह पाठ्यभृग्वेदातसामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। (नाट्य शास्त्र १/१७)

अभिधा विवक्षा तात्पर्य प्रविभाग व्यपेक्षा सामर्थ्यान्वयैकार्थी भाव दोष धन-गुणोपादानालंकार योग सावियोगरूपाः शब्दार्थयोः द्वादश संबन्धाः साहित्यमित्युच्यते ।।

(श्रृंगारप्रकाश, सप्तमप्रकाश)

ये सम्बन्ध दृश्य एवं श्रव्य दोनों प्रकार के काव्यों में प्राप्त होते हैं। दृश्य काव्य के शास्त्रकार भरत का ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें वाचिक अभिनय एवं नाट्य रसों का प्रकरण में वर्णित तत्व श्रव्य काव्यों में भी व्याख्यायित होते रहे हैं। काव्य विवेचन के सिद्धान्त का मुख्यतः अलंकार शास्त्र कहा जाता है।

इस शास्त्र के मुख्यतः २७ विचारकों की सहृदय भावुकों में आदर प्राप्त हुआ। उनके नाम एवं वैशिष्ट्य इस प्रकार हैं।

१- भरत :- काव्य में रस की सत्ता के प्रथम व्याख्याता भरत नाट्यशास्त्र के रचियता कालिदास (प्र० शती ई० पू०) से बहुत पूर्व हुये थे। उनका स्मरण कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में सादर करते हैं।

मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाभयः प्रयुक्त।
ललताभिनयं तभद्यभर्ता मरूतां द्रष्टुमनाः स लोकपालः।। (विक्रमोर्वशीयम्)

भरत के ग्रन्थ के दो भाग है।

१- नाट्यवेदागम

२- नाट्यशास्त्र।

प्रथम द्वादशसाहस्त्री एवं द्वितीय को षट्साहस्त्री कहा जाता है। इसके टीकाकार अभिनव गुप्त ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि भरत ने पूर्वाचार्यो के सिद्धान्तों का भी यथावसर सन्निवेश किया है। आज प्राप्त संस्करणों में ३७ अध्याय या ३६ अध्याय हैं।

२- भामहः- भामह प्रथम आचार्य है। जिन्होंने काव्यालंकार में सम्पूर्ण काव्य की समालोचना को लक्ष्य बनाया भरत केवल नाट्य तक सीमित थे। भरत एवं भामह के बीच कम से कम एक सहस्त्राब्दी का काल भेद है इस काल में काव्य शास्त्र के ग्रन्थ अप्राप्त है। अतः विकास परम्परा का सम्यक् दर्शन नहीं हो पाता। [१४]

भामह कश्मीर के राक्रिलगोमी के पुत्र थे तथा धर्मकीर्ति एवं दिङ्नाग के मध्य छटी शती में हुये थे [१५] किन्तु अनेक ऐसे भी प्रमाण है। जिनसे इनकी प्राचीनता भी प्रमाणित होती है। [१६]

भामह ने ३८ काव्यालंकारों का विवेचन किया है। पञ्चम शती के भट्टिकाव्य के प्रसन्न काण्ड में इतने ही अलंकार स्वीकृत है। अलंकारों के अतिरिक्त अन्य कायांग यथा-रीति गुण-दोष वक्रोक्ति एवं रसवत् अलंकारों के आश्रयी भूत रस का भी विवेचन इस ग्रन्थ में है।

भामह काव्य में वक्रोक्ति एवं रस को अधिक महत्व देते है तथापि अलंकारों

१४- ता एता ह्याचार्या एक प्रघट्टकतया पूर्वाचार्यैलक्षण स्वेन पठिताः।
मुनिनातु सुख संग्रहाय यथास्थानं निवेशिताः।। (अभिनव भारती, अध्याय ६)

१५- काव्यालंकार में प्रत्यक्ष का लक्षण दिङ्नाग के अनुसार है। धर्मकीर्ति के अनुसार नहीं। दृ० काव्यालंकार सूत्र

१६- प्रताप रुद्रय शोभूषण में विद्यनाथ लिखते है---
पूर्वेभ्यो भामहादिभ्यः सादरं विहिताञ्जलिः।
वक्ष्ये सम्यगलंकार शास्त्र सर्वस्य संग्रहम्।।
रूप्पक-भामहोद्भट-प्रभृतयाश्चिरन्तनालंकारकाराः। (अलंकार सर्वस्वम्)
ये उद्धरण एवं अभिनव (ध्वन्यालोक कारिका ११) की टीका में "भामहादिभिरलंकार लक्षण कोरेः" लिखने से यह भामह की प्राचीनतरता का संकेत मिलता है।

की अवश्यम्भाविता स्वीकार करते हैं।[१७] इनके विशिष्ठ सिद्धान्त इस प्रकार हैं।

१- काव्य शब्दार्थ रूप होता है।

२- भरत प्रतिपादी दस नाट्यगुण माधुर्यादि तीन गुणो में ही अर्न्तभूत है।

३- वक्रोक्ति सभी अलंकारो की मूल प्रेरणा है।

४- काव्य के दस दोषो का विवेचन।

३- दण्डीः- दण्डी कवि एवं भावक दोनों थे। इनका काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ काव्यदर्श है। सिंहली राजासेन प्रथम (नवीं शती) का ग्रन्थ "सिय वस लकर" काव्यदर्श पर आधारित है।[१८] अतः इनका काल नवम् शती के बाद नहीं हो सकता। बाण (छठी शती ई०) के एक पद्य की छाया काव्यदर्श में प्राप्त होने से ये बाण के पूर्ववर्ती नहीं थे। इन्हें सातवीं शती के अन्त में माना जा सकता है।[१९] इनका समीक्षा सिद्धान्त में योगदान इस प्रकार है।

१- काव्य के भेदोपभेद।

२- गौड़ी वैदर्भी आदि रीति का विस्तृत विवेचन।

३- ३५ अलंकारों का सुन्दर विवेचन। उपमा का विस्तार।

१७- "कोडलंकारोऽनयाविना" "युक्तं लोकस्वभावेन रसेश्च सकलैः पृथक्" एवं न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्"। । द्रे० काव्यालंकार वक्रोक्ति, रस विवेचन एवं अलंकार महत्वख्यापन प्रकरण

१८- दृष्टव्य - Journal of Royal Asiatic Society 1905 P.841 डा० वार्नेट का लेख। उक्त ग्रन्थ १८९२ में कोलम्बो में छपा था।

१९- दृष्टव्य- History of Sanskrit Poetices (S.K. Day P.54-68)

४- यमक का व्यापक वर्णन।

५- काव्य दोषों (१०) का सोदाहरण विवेचन।

४- वामनः- आठवीं शती में उत्पन्न [२०] वामन ने काव्यालंकार सूत्र की रचना की एवं सर्वप्रथम काव्य की आत्मा का अनुसंधान कर रीति को काव्य के प्राण के रूप में प्रतिष्ठित किया[२१] इनके सिद्धान्त इस प्रकार हैं।

१- गुण एवं अलंकार परस्पर भिन्न होते हैं।

२- वैदर्भी गौड़ी एवं पाञ्चाली नामक तीन ही रीतियाँ हैं।

३- वक्रोक्ति का विशिष्ट लक्षण ।

४- विशेषोक्ति का विशेष लक्षण।

५- आपेक्ष के दो स्वरूपो का विवेचन।

६- उपमा को अलंकारो का प्राण प्रमाणित करना।

५- उद्भट :- इनका उल्लेख कल्हण ने भी किया है। [२२] इस कश्मीरी

२०- वही पृष्ठ ७४ एवं आगे।

२१- रीतिरात्मा काव्यस्य। काव्यालं० १/२/६

२२- दीनारशतलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः।

भट्टोऽभुदुद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः।। (राज तरंगिणी ४/४६५)

इनके अतिरिक्त लोचन (पृ० १०) ४०, १३४,१५६, हेम चन्द्र (टीका पृ० १७, ११०) मणिभ्यचन्द्र (संकेत, सं० मैसूर पृ० २८६) आदि में भामह विवरण का उल्लेख है।

दृ०- History of Sanskrit . S.K. Day part I p.68

आचार्य का काल ८वीं शती था।[२३] ये वामन के आस-पास ही हुए किन्तु अलंकार सम्प्रदाय के पोषक थे। इन्होंने "भामय विवरण" नामक टीका भी लिखी थी जो प्राप्त नहीं है। इनका ग्रन्थ अलंकार सार संग्रह नाम से प्राप्त होता है। इनके काव्य शास्त्रीय योगदान को इस प्रकार ग्रहण कर सकते है।

१- शब्द अर्थ भेद से भिन्न होते है।

२- श्लेष शब्दार्थ भेद से दो प्रकार का है। किन्तु अर्थालंकार ही माना जाना चाहिए।[२४]

३- अन्य अलंकारो के साथ प्रयुक्त होने पर श्लेष ही प्रमुख होगा।

४- वाक्य में त्रिविधा अभिधाव्यापार की सत्ता सम्भव है।

५- अर्थ की द्विविधता। विचारित सुस्थ। अविचारित रमणीय की कल्पना।

६- गुणों में संघटना धर्म का विवेचन।

६- **रूद्रटः-** राजशेखर रूद्रट से परिचित थे।[२५] अतः ये नवीं शती के पूर्व थे।[२६] ये आलंकारिक थे तथापि रस का विवेचन विस्तार से किया है इनके काव्य का नाम भी काव्यालंकार है।

इनका प्रमुख योगदान अलंकार के मूल तत्व का अनुसंधान है। यथा

२३- वही P. 69 एवं आगे।

२४- काव्य प्रकाश, उल्लास ६ एवं साहित्य दर्पण १० में इसका खण्डन दिया गया है।

२५- काकुवक्रोक्ति वर्णन के प्रकरण में ''काकुवक्रोक्तिर्नाम शब्दालंकारोऽयामिति रुद्रटः। काव्य मीमांसा पृष्ठ ३१ दृष्टव्य- काव्यालंकार-रुद्रट २/१६

२६- Indian Antiquary, xii, p.30 एवं History of Sanskrit Poeties. (S.K. Day- p.78 एवं आगे)

१- वास्तव।

२- औपगम्य या औदार्य।

३- अतिशय।

४- श्लेष।

इन्होंने भामह के व्याजस्तुति को व्याजश्लेष के नाम से व्याख्यायित किया है।

७- भट्टनायकः- की कोई कृति नहीं मिलती। रूय्यक, जयरथ, महिमभट्ट आदि ने तथा स्वयं अभिनव गुप्त ने इनके ग्रन्थ "हृदय दर्पण" को उद्धृत किया है। (२७) यद्धपि इनके ग्रन्थ को अभिनव गुप्त ने नहीं देखा था। (२८)

किन्तु रस के सम्बन्ध में भावकत्व एवं भोजकत्व व्यापार का अनुसंधान करने के कारण इनकी प्रतिष्ठा थी। इन्हें व्यञ्जना विरोधी माना जाता था। क्योंकि वे आनन्दवर्धन और ध्वन्यालोक से परिचित थे। (२६)

८- मुकुल भट्ट - ये कश्मीरी कल्लट प्रतिहारेन्दुराज (६२० ई०) के पुत्र एवं अभिधामातृका वृत्ति के रचयिता थे। ये भी ध्वनिकार थे (३०)।

२७- सुशील कुमार डे ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि हृदय दर्पण नाट्य शास्त्र की टीका थी। History pf Sanskrit poetices. Part I, p. 38

२८- अदृष्ट दर्पणाममधीः ।। लोचन १/१४

२६- देखे वही -डे, पृ०-४०

३०- काव्य प्रकाश, उल्लास ५ में इनका खण्डन किया गया है।

९- प्रतीहारेन्दुराज - मुकुल भट्ट के शिष्य थे। इनका ग्रन्थ उद्भयलंकार संग्रहलघुवृत्ति नाम से प्राप्त है। यह उद्भट की टीका है कि आलंकारिक सम्प्रदाय में पर्याप्त प्रतिष्ठित हुआ था। (३१)

१०- आनन्दवर्धन - ये अवन्तिवर्मा (८५५-८८३) ई० के सभापति थे। (३२) ध्वन्यालोक के माध्यम से इन्होंने काव्य समीक्षा जगत् में ध्वनि का परिचय कराया जो सर्वमान्य हुआ। (३३) जैसे कि कवि समालोचक राजशेखर लिखते हैं।

ध्वनिनाऽति गंभीरेण काव्य तत्व निवेशना।

आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्द वर्धनः।।

इनके अनेक अन्य शास्त्रीय एवम् काव्य ग्रन्थ भी थे। (३४)

११- महिम भट्ट :- एकादश शताब्दी में ये ध्वनिकार आनन्दवर्धन की भूमि कश्मीर में ही हुए, किन्तु प्रबल ध्वनि विरोधी थे। इनका ग्रन्थ "व्यक्ति विवेक" आनन्दवर्धन के खण्डनार्थ लिखा गया लगता है। (३५)

३१- इनकी लघुवृत्ति के साथ अलंकार सूत्र-एन० डी० वनहन्ती ने सम्पादित किया था। बम्बई संस्कृत सिरीज, पूना १९२५

३२- मुक्ताकरणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चगात् साम्राज्येऽवन्ति वर्गणः।। राजतरंगणी, कल्हण ५/३४

३३- ध्वन्यालोक के कारिका एवम् वृत्ति के रचयिता के एक होने पर विवाद है। देखें History of Sanskrit (S. K. Day poetices part II. P. 102

३४- दृष्टव्य-आनन्दवर्धन-रेवा प्रसाद द्विवेदी,

३५- अनुमानेऽन्र्भावं सर्वस्यैव ध्वनेः प्रकाशयितुम्।
व्यक्ति विवेक कुरूते प्रणम्य महिमा परां वाचम्।। (व्यक्ति विवेक ग्रन्थारम्भ)

१२- कुन्तकः- इन्होंने भामह की वक्रोक्ति पर अत्याधिक विस्तार से विचार किया। इनका ग्रन्थ वक्रोक्ति जीवित है। कुन्तक ध्वनि विरोधी थे एवं उनके अनुसार वक्रोक्ति ही काव्य का प्राण है।[३६]

१३- अभिनव गुप्तः- इस महान कश्मीरिक विद्वान से सभी परिचित है। इनके सभी मूल ग्रन्थ शैव प्रत्यभिज्ञा से सम्बद्ध है। साहित्य जगत् इन्हें भरत के नाट्य शास्त्र की टीका - अभिनव भारती एवं आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक की टीका लोचन के कारण जानता है। इन्होंने भट्टतौत एवं भट्टइन्दुराज से काव्यशास्त्र की शिक्षा पायी थीं जिसे इन्होंने लोचन टीका के अन्त में लिखा भी है। भट्टतौत के काव्य कौतुक पर भी इनकी टीका थी जो अब नहीं मिलती। [३७]

१४- शौद्धोदनिः- हेमचन्द्र से पूर्व इस जैन आचार्य ने अलंकार सूत्र रचना की थी।

१५- वाग्भटः- वाग्भटालंकार के रचयिता थे एवं अलंकारो की संख्या में विसतार किया है। ये भी हेमचन्द्र से प्राचीनं थे।

१६- रूय्यकः- ये अलंकार सर्वस्य के रचयिता थे। पण्डितराज जगन्नाथ ने विषमालंकार के विवेचन में इन्हें उद्धृत कर खण्डन किया है। [३८]

३६- वक्रोक्तिः काव्य जीवितम्

३७- इसका उल्लेख लोचन में है। व० जे० सोमेश्वर जेने (काव्य प्रकाश के टीकाकार) इस ग्रन्थ को देखा था। "तच्च भट्टतौतेन काव्यकौतुक अभिनवगुप्तश्च तट्टन्तौ निर्णीतम्" दे० H.S.P.- Day p.102

३८- अरण्यानी क्वेयं धृतकनक सूत्रः क्वसभृगः।
इत्यलंकार सर्वस्वोदाहृतं पद्यम-----।। रसगंगाधर २, विषमालंकार

१७- भोजः- इनका काल ६६६ से १०५१ ई० तक था। कल्हण लिखते है कि महाराज भोज सच्चे कवियों के पोषक थे एवं मित्र थे। [३६]

इन्होंने काव्यो के अतिरिक्त शिलाशास्त्र [४०] एवं अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों का प्रणयन किया था। ये ध्वनिवादी आचार्य थे। श्रृंगार एवं "सरस्वती-कण्ठाभरण" इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इनका प्रमुख योगदान रस के क्षेत्र में है एवं विशेषतः श्रृंगार रस को रसराज एवं प्रकृतरस की प्रतिष्ठा देना भोज की महिमा है। काव्य प्रकाश कार ने इन्हें उद्धृत किया है। [४१]

१८- मम्मटः- काश्मीरिक विद्वान जैय्यट के पुत्र मम्मट ने वाराणसी में अध्ययन किया। ऐसी जनश्रुति है। व्याकरण महाभाष्य के टीकाकार कैय्यट एवं प्रसिद्ध वेद भाष्यकार उव्वट मम्मट के ही छोटे भाई थे। इनका ग्रन्थ "काव्य प्रकाश" काव्य समीक्षकों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित है। इस ग्रन्थ की संकेत नाम्नी प्रथम टीका माणिक्य चन्द्र ने ११६० ई० में लिखी थी। अतः मम्मट भोज के बाद एवं माणिक्य चन्द्र के पूर्व थे।

इनका प्रथम योगदान ध्वनि स्थापना एवं व्यंजनावृत्तियो के विषय में उठायी गई आपत्तियों को खण्डित करने सन्दर्भ में है। इसी कारण इन्हें ध्वनि प्रस्थापन परमाचार्य की उपाधि दी गयी थी।

३६- स च भोजनरेन्द्रश्च दानौत्कर्षेण विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं दावास्तां कविबान्धवौ।। राजतर० ७/२५६

४०- रामाणचम्पू एवं "समराङ्ण सूत्रधार" भोज के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

४१- द्र०- का० प्र० उल्लास १० उदात्तालंकार
"मुक्ता केलि------------- । यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत् लीलायितम्।

इन्होंने ७० काव्य दोषो [४२] १०४५५ ध्वनिभेदो [४३] एवं ४५१५८४ गुणीभूतव्यंग्य प्रभेदो [४४] का वर्णन किया है। इन्होंने ६७ अलंकारो का वर्णन किया है। [४५]

१६- हेमचन्द्रः- गुजरात के इस जैन विद्वान के ग्रन्थ काव्यानुशासन में अलंकार तत्वो का विशेष वर्णन है। यह ग्रन्थ प्राचीनाचार्यो का संलग्न मात्र है।

२०- केशवमिश्रः- (१६ वी० शती ई०) - इन्हें अलंकार शेख का कर्ता माना जाता है। इनका काव्य लक्षण साहित्य दर्पणकार से मिलता जुलता है। [४६]

२१- पीयूषवर्षः- (१३ वी० शती ई०) - इन्होंने चन्द्रालोक नामक अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में काव्य प्रकाश की भाँति सभी विषयों का विवेचन है। अपय्य दीक्षित ने इसी ग्रन्थ के व्याख्या के रूप में कुवलयानन्द की रचना की थी।

२२- विद्यानाथः- ये तेलगू विद्वान थे। इनका लक्षण ग्रन्थ प्रतापरूद्रयशोभूषण के नाम से विख्यात है। ये पीयूषवर्ष के समकालिक थे।

४२- दे० का० प्र० उल्लास ७,१६ पददोष, रावाक्यदोष, २३ अर्थदोष एवं १० रसदोष।
४३- वही- उ० -४।
४४- वही- उ० -५।
४५- वहीं उल्लास ८ में ६ शब्दालंकार एवं उल्लास १० में ६१ अर्थालंकार वर्णित है।
४६- वाक्यरसात्मकं काव्यम्, साहित्यदर्पण।
काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखाविरोधकृत्।। (अलंकारशेखर)

२३- विश्वनाथः-(१४ वीं शती ई०) -- उड़ीसा में उत्पन्न इस विद्वान् ने संस्कृत समीक्षकों को साहित्य दर्पण के रूप में अत्यन्त उपयोगी एवं सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ दिया। इन्होंने काव्य प्रकाश की दर्पण नाम्नी की टीका रचना की थी। यद्यपि स्थान-स्थान पर काव्य प्रकाश का खण्डन भी किया है।

प्राचीन आचार्यों के सभी सिद्धान्तों को अनुसंधान पूर्वक परिशोधित करके एक ही ग्रन्थ में समाविष्ट करना विश्वनाथ का अपूर्व योगदान है।

२४- गोविन्द ठक्कुरः- (१६ वीं शती ई०) -- इनकी प्रदीप नाम्नी टीका काव्य प्रकाश की समस्त टीकाओं में श्रेष्ठ है। इस टीका पर नागोजी भट्ट जैसे प्रसिद्ध विद्वान ने उघोत टीका की रचना की थी।

२५- अप्पय्य दीक्षितः- (१५२०-१५६३ ई०)-- काञ्ची के निकट अड़पप्पल ग्राम में भरद्वाज गोत्रीय रगंराजाध्वरि के पुत्र अप्पय्य दीक्षित अनेक शास्त्रों के प्रमाणिक आचार्य थे। अपनी ७२ वर्ष की आयु पूरी करने से पूर्व इन्होंने काव्य काव्य शास्त्र एवं दर्शन के १०० प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना कर दी थी।

२६- पण्डितराज जगन्नाथः- काव्यशास्त्र के मौलिक विचारकों की जो माला अब तक बन पायी है, उसके सुमेरु भूत ग्रन्थ रसगंगाधर की रचना पण्डितराज जगन्नाथ ने की थी। जगन्नाथ मूलतः तैलंगूदेशीय थे। वाराणसी में ही अध्ययनादि किया था।

इनका ग्रन्थ अत्यन्त प्रौढ़ शैली में लिखित है तथा स्थान- स्थान पर अप्पय्य दीक्षित के कुवलयानन्द तथा चित्रमीमांसा एवं मम्मट के काव्यप्रकाश के सिद्धान्तों का खण्डन किया है। रसगंगाधर सूक्ष्म विचारकों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार काव्य समीक्षा के सिद्धान्तों का अनुसंधान १७ वीं-१८ वीं शती तक अविच्छिन्नरूप से होता रहा था। इन समस्त आचार्यों के सिद्धान्तों के मौलिक तत्वों को दृष्टि में रखकर मुख्यतः छैः सम्प्रदाय कहे जाते हैं।

१- रस सम्प्रदाय - भरत से मम्मट तक।

२- अलंकार सम्प्रदाय- भामह उद्‍भट रुद्रट।

३- रीति सम्प्रदाय-दण्डी एवं वामन।

४- वक्रोक्ति सम्प्रदाय- कुन्तक।

५- ध्वनि सम्प्रदाय- आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त से पण्डितराज तक।

६- औचित्य सम्प्रदाय -- क्षेमेन्द्र।

इन सभी सम्प्रदायों में काव्य के प्राण भूत वास्तविक सौन्दर्य के अनुसंधान की चेष्टा की गयी है। अनन्तर रसव्याक्तिवाद की प्रतिष्ठा से ध्वनि सम्प्रदाय एवं रस सम्प्रदाय तक एक हो गया एवं यही सम्प्रदा आज भी सर्वश्रेष्ठ काव्यात्मक विवेचक के रूप में प्रतिष्ठित है। हम अपने विवेच्य ग्रन्थ की समालेचना में सभी आचार्यो के सिद्धान्तों के नितष्कृष्यर्थ के संग्राहक मम्मट एवं विश्वनाथ के ग्रन्थों को आधार बनायेगें।

भक्ति का सौन्दर्यशास्त्रः- महाकाव्यों एवं काव्यो की रचनाओं में प्रतिपाद्य नायक महाभारत, पुराण या रामायण का पात्र होना चाहिए। ऐसा आदेश लक्षण कारों का आदेश था। [४७] यद्यपि अन्य धीरोदात्तादि गुणोपेत क्षत्रियों के नायकत्व को भी स्वीकृति दे दी गयी किन्तु इसी मध्य भक्त दार्शनिकों के चिन्तन धारा में अपने इष्ट को मात्र नायक की श्रेणी में रखकर समीक्षा करने की पद्धति भली नहीं प्रतीत हो रही थी।

४७- दण्डी-- विश्वनाथ--- सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
(साहित्य दर्पण ६/३१५)

यद्यपि देव का स्वरूप वर्णन या उसके प्रेम में उत्पन्न कविता को साहित्य समीक्षकों में भाव की श्रेणी में रखकर पृथक कर दिया था।[४८] किन्तु जयदेव आदि के काव्यों की अभिव्यक्तियाँ "भाव" तक ही सीमित नहीं रह सकीं। उनकी समीक्षा साहित्यिक सिद्धान्तों के अनुसार ही की गयी। अतः भक्त विद्वानों ने भक्ति की मर्यादा की रक्षा करते हुए सौन्दर्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को जन्म दिया।

मुख्यतः रूप गोस्वामी एवं मधुसूदन सरस्वती ने पौराणिक नायक, परमभागवत् तत्व के मूर्तरूप श्री कृष्ण विषयक काव्यात्मक प्रसंगों के केन्द्र मानकर उनसे काव्यों की विवेचनाएँ की है। प्रकृत ग्रन्थ के नायक श्री कृष्ण हैं तथा कोई भी महाकवि कवि शिक्षाओं की मर्यादाओं की अवहेलना नहीं कर सकता। अतः प्रकाश काव्य के भक्ति रस के समीक्षकों के सोन्दर्यानुसार विषय में कुछ पंक्तिया आवश्यक हैं।

गत पृष्ठों से स्पष्ट है कि काव्य की आत्मा का अनुसंधान मम्मट के पश्चात स्थिर हो चुका था। रस ही काव्य की आत्मा है, जो विस्तृत रूप में ध्वनि नाम से स्वीकृत हुई[४९] चरम समालोचक पंडित राजजगन्नाथ एवं विश्वनाथ रस विहीन काव्य को काव्य की संज्ञा नहीं देते है।[५०] अभिनव गुप्त के पश्चात् यह स्वीकृत हो गया था कि भावक के चित्त की आनन्दवस्था ही रस है। यहीं काव्य के उद्देश्यों में भी परिगणित है।

"सद्यः पर निर्वृतये" (का० प्र० १/३) से मम्मट का तात्पर्य रसावस्था से ही है। इस रस को जगन्नाथ ने उपाधिविहीन चित्त या आत्मा की संज्ञा दी है।[५१]

४८- रतिर्देवादिविषया भावः प्रोक्तः। (काव्यप्रकाश ३०४)

४९- काव्यस्यात्मा ध्वनिरितिषु धैर्यत् समाम्नात पूर्वम। (ध्वन्यालोक क)

५०- दृ० रसगंगाधर आ० १, एवं साहित्य दर्पण पारि०। काव्यलक्षण।

५१- भग्नावरण चिदेव रसः।। रस गंगाधर, रस प्रकाश।

रूपगोस्वामी आनन्द को लौकिक सीमा से उठाकर दिव्यभक्ति से संयुक्त कर देते हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण चिद्घनान्द स्वरूप हैं। उनका सौन्दर्य एवं उनकी क्रीडाएँ मुक्ति दायिनी हैं। भक्त उन अनुभूतियों को काव्य में प्रतिबिम्बित देखता है और परमविभु अविच्छेद्य आनन्द में डूब जाता है। मधुसूदन सरस्वती भक्ति रसायन में इसी भाव को व्यक्त करते है।

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेवहि।
मनोगतस्तदाकारो रसतामेति पुष्कलम्।।

साहित्यिक रस सिद्धान्त एवं भक्तिरस सिद्धान्त में प्रक्रियागत भेद नहीं है।[५२] किन्तु स्थाई भाव की अवधारण एवं विभाव के आश्रय के विषय में अवश्य ही भेद दिखता है। अभिनव गुप्त या मम्मट की व्याख्या में स्थाई भाव लोकानुभूतियों से परिपुष्ट इत्यादि है, किन्तु रूपगोस्वामी का यह सभी·मीन कथन है कि लौकिक रति में स्थायित्व सम्भव नहीं है, क्योंकि उन सभी की परिणति क्लेश में होती है।

वस्तुतः स्थाई भाव कृष्णरति ही हो सकती है क्योंकि वह नित्यानन्द लहरी से सम्बद्ध है। यह रति सभी प्रकार के अन्य भावों को एवं उसके कर्मज स्थायित्व को अभिभूत करके विराजमान होती है।[५३]

५२- विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।। रससूत्र की तुलना भक्तिरसाभृत सिन्धु के श्लोक से की जा सकती है।

सामग्री परिपोषेण परमारस रूपता।
विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।।
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः एषा कृष्णरतिः स्थाई भावो भक्ति रसो भवेत।
तुलनीय- काव्य प्रकाश ४ उ० रस प्रकरण।

५३-भक्तिरसामृत सिन्धु विभाग ४ स्थाई भाव वर्णन। एवं भूमिका पृ० ३८

अविरूद्धान् विरूद्धांश्च भावान् यो वशंता नयेत।
सुराजेत् विराजेत् स स्थाई भाव उच्यते।।

द्वितीय भेद भावाश्रय का है। साहित्यिक रसप्रक्रिया में अभिनव गुप्तादि के अनुसार नायक आलम्बन होता है। अन्य सभी पात्रो के भाव उस आलम्बन का पोषण करते हुए उसमें विलीन हो जाते है तथा भावक का स्थाई भाव उससे पुष्ट होकर रसरूप में परिणत होता है। भक्ति रस के प्रकरण में विभावों का आश्रय कृष्ण-राधा-रुक्मिणी नहीं होते, अपितु भक्त होता है। नित्य प्रकाश स्वरूप पर ब्रह्म में किसी प्रकार का भावारोपण नहीं हो सकता। अपितु भक्ति कृष्णरति के कारण अपने मायिक आवरणों एवं श्रीकृष्ण की सौन्दर्यानुभूति की रसिकता में उन भावों का आश्रय बनता है तथा उसके कल्पित विभावादि उसकी रति का पोषण करते है। [५४] इस व्याख्या में कारयित्री एवं भावयित्री दोनो प्रतिभाओं का सम्यक् समायोजन है।

भक्ति रसामृत सिन्धुकार ने सभी रसों को भक्ति में अन्तर्निहित किया है तथा उसे गौण भक्ति कहा है किन्तु तटस्थ दृष्टि से देखने पर स्पष्ट है कि जिस प्रकार मम्मट ने शान्त रस एवं विश्वनाथ ने वात्सल्यरस की उद्भावना की उसी प्रकार रूपगोस्वामी ने भक्ति को पृथक रस की प्रतिष्ठा दी जो कि रस सिद्धान्त का विकास ही है। यह बात और है कि उन्होंने भोज (श्रृंगार प्रकाश) या भवभूति (उत्तर राम चरितम्) की भाँति श्रृंगार या करुण को सभी रसों का मूलउत्स न मानकर नव स्थपित भक्ति को सभी का हेतु माना है।

५४- द्र० भक्ति रसामृत सिन्धु रूपगोस्वामी (सं० डा० नगेन्द्र)

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षणः- कथा का स्रोत-

"रुक्मिणी हरणम्" श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह के कथानक का कमनीय काव्यरूप है। इस कथानक के स्रोतों के विषय में कुछ विशेष तथ्यों का अनुसंधान आवश्यक है। इस कथा को अन्य कवियों ने भी रचना का विषय बनाया है। अतः उनका परिचय प्राप्त करना मूल ग्रन्थ के सन्दर्भ में विशेष उपयोगी होगा। विवेच्य ग्रन्थ के सन्दर्भ में दो प्रकार के साहित्य साक्षात् सुपस्थित होते है।

१- पौराणिक साहित्य

२- काव्य एवं नाटक

१- पौराणिक साहित्य- हरिवंश पुराण-

महाभारत के परिशिष्टांश के रूप में प्रसिद्धि है। इस पुराण में रूक्मिणी कृष्णा विवाह की घटना सर्वाधिक विस्तार से प्रस्तुत की गई है। [५५] विष्णु पर्व में अध्याय ४६-६१ तक विस्तार पूर्वक इस इतिहास का वर्णन इस घटना के राजनैतिक महत्व को उद्घाटित करता है। रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से न होने देने के लिए जरासंध शाल्व सुनीथ आदि ने मन्त्रणा कर कुचक्र रचा था।

हरिवंश के विवरण को यही कथा विष्णु पुराण[५६] एवं ब्रह्म पुराण[५७] में संक्षिप्त रूप में है।

इस प्रकरण का भागवतपुराण में अधिक साज सज्जा के साथ रखा गया

५५- हरिवंश विष्णु पर्व -- अ० ४७-६१

५६- विष्णु पुराण ५/२६, २८

५७- ब्रह्म० अ० ६१

है।[५८] पद्मपुराण भागवत का अनुवाद अति संक्षेप में करता है।[५९] देवी भागवत एवं अग्नि पुराण एवं ब्रह्म बैवर्तपुराण[६०] के प्रकरण संक्षिप्ततम हैं। अतः विशेष सहयोगी नहीं बन पाते।

हरिवंश पुराण श्री मद्भागवत से काल की दृष्टि से अत्यधिक प्राचीन माना जाता है।[६१] विष्णु एवं ब्रह्म भी प्रारम्भिक पुराण हैं।[६२] अतः हरिवंश का विवरण ऐतिहासिक साक्ष्य का रूप ग्रहण करता है। श्री मद्भागवत तथा तत्परम्परानुयायी पुराण कृष्ण का भगवत्ता एवं निर्दोष चरित्र के रहस्योद्घाटक है। अतः उनके विवरणों में अतिरिक्त सूचनायें मिलती है। जिन्हें यथावसर परीक्षित किया जायेगा।

काव्यः- रुक्मिणी विवाह के प्रसंग को विषय बनाकर रूपक एवं महाकाव्य दोनों की रचना हुई है। आसेतु हिमाचल इस पवित्र इतिहास ने कवियों के हृदय को रचना की प्रेरणा दी। कुछ कवियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है। जिसके आधार पर इस कथा की व्यापकता प्रभाव एवं महत्व का अनुमान किया जा सकता है।

रुक्मिणी-परिणयः- यह शीर्षक अधिकांश कवियों को रुक्मिणी हरण से अधिक अच्छा लगा था। इस शीर्षक से नौ रचनायें प्राप्त होती हैं। लेखकों की सूची

५८- भाग० १०/५२-५४

५९- पद्मपुराण उत्तरखण्ड अ० २४८

६०- देवी भा० ४/१९-२०, अग्नि० १३, बह्म बै० कृष्ण जन्म खण्ड

६१- दे० हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन पृ०-६३ एवं आगे।

६२- द्र० History of Darmshastra - Kame P.V. Vol. III. Note on purans, and puranic record. by R.C. Hazra

निम्नवत् है।

१- विद्याचक्रवर्तिन [६३] ने तेरहवीं-चौदहवीं शती में रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य को १६ सर्गों में रचा था। इसने काव्य प्रकाश में अलंकार सर्वस्व की टीका भी की थी।

२- परमानन्द महापात्र का रूक्मिणी परिणय ११ सर्गों में है [६४] यह कवि भी उड़ीसा का था।

३- रुक्मिणी परिणयम् नाम से गोविन्द रथ ने महाकाव्य रचा था। यह उड़ीसा के शासक मुरुण्ड का समकालिक था। [६५]

४- आत्रेयवरद १६ वी० शती में हुए थे। एवं ग्रन्थ बम्बई से प्रकाशित हुआ था। [६६]

५- कवि तार्किक सिंह अरकोट जिले के गुण्टकुटी ग्राम में रहते थे। [६७]

६- रामवर्मन, इन्हें अश्विनी महाराजा के नाम से भी जाना जाता है। इनका काल १७५७-१७८६ तक है। इन्होंने रुक्मिणी परिणय के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। [६८]

६३- देखें Triennial cat. of Sanskrit mass. in oriental library, Madras Vol.IV

६४- तत्रैव ५६३२

६५- तत्रैव ५६८७

६६- Catalogue of Manuscripts in the palace library, Tanyore by P.P.S. Sartri मातृका सं० VII 3502 में सुरक्षित है।

६७- Descriptire catalouge Sanskrit manuscripts library Madras, xxi 8410, 8489.

६८- History of classical Sanskrit Literature P. 663.

७- विश्वेश्वस लक्ष्मीधर के पुत्र एवं उमापति के भाई थे। इनका काल १८वीं शती का पूर्व भाग है।[६९] इनका रुक्मिणी परिणय नाटक[७०] काव्यमाला (भाग ८/५२) में प्रकाशित हो चुका है। इसके उद्धरण उन्होंने अलंकार कौस्तुभ में दिये है।[७१]

८- दक्षिण में गोदावरी जिले के निवासी वेंकटशास्त्री ने रुक्मिणी परिणय के साथ अलंकार सुधा सिन्धु की भी रचना की थी।[७२]

९- एडवेट्टकिट्ट नम्बूदरी का रुक्मिणी परिणय राजा रामवर्मन् के समय में ही उन्हीं के शासन भूमि में लिखा गया था। जबकि रामवर्मा स्वयं भी इसी विषय पर काव्य लिख चुके थे।[७३]

१०- वत्सराज की पुस्तक रुक्मिणी परिणय ईहामृग है। इसका मञ्चन १२-१३ वीं० शती के राजा त्रैलोक्य वर्मा की सभा में हुआ था।[७४]

द्वितीय शीर्षक रुक्मिणी कल्याण है जो विद्याचक्रवर्तिन एवं राज चूड़ामणि के प्रिय था।

१- विद्याचक्रवर्तिन ने १३वीं-१४वीं शती में "रुक्मिणी कल्याण" महाकाव्य को १६ सर्गो में रचा था। इसने काव्य प्रकाश एवं अलंकार सर्वस्य की टीका भी की थी।[७५]

---

६९. History of classical Sanskrit Literature P. 355.

७०. Cat. Cap. II 1339

७१. History of classical Sanskrit literature P. 786,

७२. P. 806

७३. P. 804

७४. Journal of royal asiatic society of Bengal Vol. XVII, 33, and Vol. XXXVII, 121

७५. Triennil cat. of Sanskritmass, in oriental library, Madras. Vol. IV 5425

२- राज चूड़ामणि दीक्षित की पुस्तक "रुक्मिणी कल्याण" हैं। [७६] दीक्षित जी रत्नखेट श्रीनिवास के पुत्र थे एवं तंजौर के राजा रघुनाथ के आश्रित थे। ये अपने समय के विख्यात मीमांसक थे तथा १६३७ ई० में जैमिनीय सूत्रों पर तन्त्र शिक्षा मणि व्याख्या की रचना की थी।

रुक्मिणी कल्याण १० सर्गो का महाकाव्य है। [७७]

३- बीसवीं शती (१६१३ ई०) में प्रो० सुब्रहमण्य सूरि ने रुक्मिणी कल्याण शीर्षक से एक गीत प्रबन्ध लिखा था। इसके गीत विभिन्न रागों में निबद्ध है। यह सम्भवतः प्रकाशित नहीं है।

चम्पू लेखको ने भी "रूक्मिणी परिणय चम्पू" शीर्षक से तीन रचनायें दी हैं।

१- पामिडिपडु अग्रहारी में उत्पन्न बेललभकोन्द रामराया ने १६०० ई० में एक चम्पू की रचना की थी । किन्तु दुर्भाग्य से वह अब प्राप्त नहीं होता। [७८]

२- अम्मालाचार्य कृत चम्पू मैसूर में सुरक्षित है। [७६]

३- प्रतिवादि भंयकर के परिवार के वेंकटाचार्य ने भी एक चम्पू काव्य की रचना इसी शीर्षक से की थी। [८०] इसके अतिरिक्त - रुक्मिणी कृष्णवल्ली यह किसी पर्थिराज द्वारा प्रणीत काव्य है। इसकी भाषा प्राकृत है। [८१]

---

७६. History of classical Sanskrit literature, Krishnamachari. P. 197.

७७- इसका प्रकाशन अडियार से हुआ था।

७८. Bharati, 1928 P.159 के मार्कण्डेय शर्मा का लेख।

७६. Catalogue on Sanskrit mass, in oriental library Mysore, 270

८०. Triennial cat of Sanskrit mass in oriental library. Madras. vol II 3599

८१. Catalogue catalogorium, 527.

रुक्मिणी कृष्ण विवाहः- तँजौर के प्रसिद्ध नाइक राजा (१६१४ ई०) की अनेक रचनाओं में इस काव्य का परिगणन होता है। [८२]

रुक्मिणी पाणिग्रहणः- इसकी रचना गोविन्दान्तर्वाणी ने की थी। बम्बई में इसका प्रकाशन भी हो चुका है। [८३]

रुक्मिणी विजयः- इसके रचयिता वादिराज थे। [८४] इनका निधन १६७४ ई० में हुआ था।[८५] इनका जीवन चरित रघुनाथ के वादिराज वृत्तरत्न संग्रह नामक ग्रन्थ में प्राप्त होता है। [८६]

रुक्मिणी स्वयंवर प्रबन्धः- इस महाकाव्य की रचना एडवथिकोडमान के नम्बूदरीपाद ने की थी। [८७] शेष चिन्तामणि ने "रुक्मिणी हरणम्" नाटक की रचना की थी। [८८]

मैसूर के वेंकट भूपति ने रुक्मिणी स्वयंवर (अंक) की रचना की थी। [८९]

---

८२. द्र० Sources of Vijayanagdas history, Madras, P, 287.

८३- द्र० History of classee. Sanskrit lit. P, 305

८४- Catalogue of Catcalcutta I, 562

८५- Catcat 1638. Cat ibid p. 638

८६- Catalogue of Sanskrit in Adyar library Madras II 25

८७- n`0 History of classee : Sanskrit literature of 258.

८८- द्र० त्रावनकोर का संस्कृत हस्तलेखों का सूची पत्र सं० ७८

८९- यह मैसूर के संस्कृत हस्तलेख सूची से २७४-२८७ में सुरक्षित है।

रुक्मिणी मगंलम्ः- इस ग्रन्थ की मातृका प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित थी। विस्तृत भूमिका के साथ इसका प्रकाशन गंगानाथ झा शोध संस्थान से १९९२ ई० में हुआ है। इसके हस्तलेख की अन्य प्रति नहीं प्राप्त होती है। [९०]

विषय का महत्वः- इस प्रकार गत पृष्ठों के विवेचन से ज्ञात होता है कि किसी भी युग में कवि प्रतिभा अपने शाश्वत मूल्यों के प्रमाण भूत तत्वों को अपनी लोकोत्तर शैली में समाज के सम्मुख समुपस्थित करना बाधित नहीं करती ।

आरम्भिक दिव्य आर्ष काव्यों को काव्य समीक्षण की परिधि से बाहर रखने का हेतु भी अत्यन्त तर्क संगत बताया गया है। वस्तुतः भारतीय प्रज्ञा ने किसी कथ्य को संक्रमित करने की तीन शैलियाँ निर्धारित की है।

१- प्रभुसम्मित शैलीः- भाव संक्रमण की उदात्ततम प्रक्रिया में इस शैली का प्रयोग होता है। जैसे श्रेष्ठ व्यक्ति कनिष्ठ को साक्षात विधिनिषेध का आदेश देता है। इस प्रकार की शैली देवाणी में दृष्टिगोचर होती है क्योंकि वेद का धर्म तत्व है। [९१] तथा धर्मादेश साक्षात् आदेशात्मक होते हैं।[९२] यथा- *ज्योतिष्टोन स्वर्गकामो यजेत् धर्मचर, सत्यंवद, स्वाध्यायान्माप्रमदः* इत्यादि वाक्य। अतः इस प्रकार के वाक्यों के मूल उत्स वेद को किसी भी परिस्थिति में काव्य समीक्षा में नहीं लाया जा सकता।

९०- दृष्टव्य रुक्मिणीमंगलम्- सं० डा० सत्यवृत त्रिपाठी इलाहाबाद- १९९२

९१- वेदोऽखिलो धर्ममूलम् "मनुस्मृति"।

९२- काव्य प्रकाश उल्लास। "कान्तासम्मिततयोपदेशभुजे" की वृत्ति

२- सुहृतसम्मित शैलीः- जिस प्रकार मित्र किसी भाव के गुणदोष को सोदाहरण स्पष्ट करता हुआ मानने की सम्मति देता है। उसी शैली में संस्कृत साहित्य के पुराणों ने शाश्वत मूल्यों को समझाया है। वहाँ "सत्यंवद" का सीधा आदेश न देकर हरिश्चन्द्रादि के इतिहास को उपस्थित कर सत्य भाषण की कल्याणत्मकता स्पष्ट करते हुए सत्यभाषण की सम्मति दी जाती है।

३- कान्तासम्मित शैलीः- यह संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक समादृत शैली कही गई है। कान्ता कभी अपने उद्देश्य को वाणी से प्रिय के समक्ष नहीं प्रकट करती, अपितु ऐसे परिमार्जित एवं सुमधुर शब्दों को अनुकूल अवसरों पर उच्चरित करती है कि उसका प्रियतम उद्देश्य स्वतः प्रेरणा से पूर्ण कर देता है। यही शैली काव्य की है। कालिदास का रघुवंश स्वतः ही अज, रघु, राम, कौत्स आदि के आचरणों की अन्तः प्रेरणा दे देता है।

१- जब कवि किसी लोकख्यात नायक अथवा घटना का कविकर्म का विषय बनाता है तब उसकी विवक्ष मात्र घटना के प्रतिपादन में नहीं होती, अपितु उसके माध्यम से निजस्फूर्त समयोचित संदेश देने की होती है।

इस दृष्टि से किसी नवीन नायक का ग्रहण न कर पौराणिक नायक के वर्णन की परम्परा संस्कृत काव्यों में रही है। ऐसे नायक लोक प्रतिष्ठित होने के कारण विशाल पाठक वृन्द को काव्याध्ययन की ओर प्रवृत्त करते हैं।

पौराणिक सुहृतसम्मित शैली में प्राप्त एवं ज्ञात नायक अथवा इतिहास कवि की कल्पनाओं से सजकर चामत्कारिक प्रभाव लोक पर छोड़ता है। अतः इस प्रकार के पौराणिक नायक या इतिहास वस्तुतः सुहृतसम्मित एवं कान्तासम्मित शैलियों के मध्य सेतु

बन जाते हैं।

२- समीक्ष्यमाण ग्रन्थ "रुक्मिणी-हरण" के नायक श्रीकृष्ण एवं घटना हरिवंश पुराण की है। इस प्रकार के एक नायक अथवा घटना को लेकर सर्वप्रथम पाणिनी ने "जाम्बवती जय" महाकाव्य रचा था जो अप्राप्त है। ततूपश्चात भास के नाटक, अश्वघोष का बुद्धचरित कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् आदि।

३- नाटक भवभूति के उत्तररामचरित एवं महावीर चरितम् नाटक आदि उदाहरण हमें प्राप्त हैं। भारवि ने इस प्रकार की शैली को ग्रहण कर काव्य में एक नई विधा को जन्म दिया जो विचित्र मार्ग के नाम से विख्यात हुई, किसी छोटे से पौराणिक आख्यान को अपनी कल्पना की तूलिका से विस्तृत बनाने की शैली ने कवि को अद्भुद स्वतंत्रता दी। अपने ज्ञान और काव्य पाक के प्रदर्शन की। रत्नाकर भारवि श्री हर्ष माघ इसके प्रमुख आदर्श बने। प्रकृत विवेक कवि काशीनाथ "सुधीसुधानिधि" भी इस ऋंखला की सशक्त कड़ी है।

४- बीसवीं शती के पराधीन भारत में कुछ राजनीतिक कारणों से संस्कृत मृत भाषा घोषित होने लगी थी। किन्तु तथ्य यह था कि काव्य की प्रत्येक विधा से कवि संस्कृत के माध्यम से अनवरत अपना संदेश देते रहे थे। इस दृष्टि से भी एक लघु कथानक को महाकाव्य का स्वरूप प्रदान करना विशेष महत्व रखता है।

५- काव्य समीक्षा का सिद्धान्त जैसे जैसे विकसित होता रहा वैसे वैसे परवर्ती कवि नवीन विचारों का लाभ लेकर उनका प्रयोग काव्य में करते रहे। भामह प्रवर्तित ३५

अलंकार अब शताधिक हो चुके है। जिन्हें अलंकार कौस्तुभ आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है। भारत के ८ रसों में काव्य प्रकाशकार ने

निर्वेदः स्थायि भावोऽस्ति शान्तोऽपिनवमो रसः।। (काव्य प्रकाश-४)

कह कर नौ बनाया। साहित्य दर्पणकार ने वात्सल्य जोड़ा एवं रूपगोस्वामी ने भक्ति को भी रस की प्रतिष्ठा देकर एकादश संख्या पूर्ण की। इस विकसित काव्य सिद्धान्तों का समुचित उपयोग बीसवीं शती के महाकाव्यों में दृष्टिगोचर हो। इसकी समीक्षा साहित्यिक भावकत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

६- गत पृष्ठों से स्पष्ट है कि रुक्मिणी-कृष्ण विवाह से सम्बद्ध काव्यों की संख्या पर्याप्त है साथ ही इसके अधिकतर कवि उड़ीसा एवं दक्षिण भारत के प्रान्तों से है। अतः निश्चित रूप से उन काव्यों में तत्कालीन वैष्णव दर्शन के उन स्वरूपों का प्रतिबिम्ब इन ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होता है। जिनका प्रभाव उन प्रान्तों में विशेष रूप से रहा था।

यथा-उड़िया कवियों पर गौड़ीय वैष्णव धारा और चैतन्य के अचिन्त्यभेदाभेद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा दक्षिण प्रान्तों के कवियों पर विशिष्यद्वैत एवं माध्वादि सम्प्रदायों की छाप स्पष्ट होती है।

प्रकृत कवि मध्य देश के है, जहाँ सभी वैष्णव-सम्प्रदाय एवं शांकर वेदान्त साथ-साथ पुष्ट एवं समादृत हुए है। ऐसे में प्रस्तुत महाकाव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि समीक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

७- हरिवंश की कथा जिस प्रकार भागवत में परिभापित अवस्था में है। उसी प्रकार काव्यों में भी यथा रूचि उसका विकास एवं पल्लवन हुआ है। अन्य काव्यों एवं

पुराणों के सापेक्ष प्रस्तुत महाकाव्य सी गति की दिशा का समीक्षण बीसवीं शती के लोकमानस का प्रतिबिम्ब समुपस्थित करती है।

समीक्षाः-

अतः इस महाकवि की उदान्त काव्य चेतना, गम्भीर निति, दर्शन एवं सरस कथा विकास की प्रगति सूझ का शास्त्रीय समीक्षण संस्कृत के श्रेष्ठ रचनात्मक साहित्य के वर्तमान अनुसंधान अध्ययन में अत्यन्त मूल्यवान और उपादेय सहयोग प्रदान कर सकती हैं।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

संस्कृत के पुराण साहित्य में रुक्मिणीहरण कथा का अनुशीलनः-

रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण का विवाह श्रीकृष्ण के जीवन काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक, और राजनैतिक घटनाओं में से एक थी। इस विवाह से मात्र मगध नरेश के दक्षिणापथ पर विदर्भ जैसे शक्तिशाली राज्य की मैत्री एवं सम्बन्ध के माध्यम से आधिपत्य की महत्वाकांक्षा ही भंग नहीं हुई थी अपितु इसी विवाह से जुड़ी राजनैतिक घटनाओं के कारण ही कृष्ण ने मथुरा को छोड़कर द्वारका में अपनी सुदृढ़ राजधानी का निर्माण भी किया था। इसके अतिरिक्त विदेशी राजा कालयवन जो कि जरासन्ध के आमन्त्रण पर कृष्ण का वध करने आया। उसकी पराजय एवं वध की घटना भी इसी प्रकरण से जुड़ी हुई है।

अधिकांश महाकाव्यों की रचना वास्तविक घटना से प्रेरित होकर ही की जाती है। यही स्थिति रुक्मिणीहरण के सम्बन्ध में भी है। वस्तुतः इस घटना का सम्पूर्ण ऐतिहासिक विवरण प्रथमतः हरिवंश पुराण में प्राप्त होता है। हरिवंश के इस ऐतिहासिक साक्ष्य को अन्य पुराणों में अनेक महाकाव्यीय तत्वों एवं कल्पनाओं का समावेश करते हुए सरस रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस कथा का प्रमाणिक इतिहास महाभारत के खिलअंश में अर्थात हरिवंश में सुरक्षित था। इस तथ्य की प्रामाणिकता साहित्यिक समालोचक एवं शास्त्रकार ई० नवीं शताब्दी के आस पास मुक्त कण्ठ से स्वीकार करने लगे थे। जैसा कि आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक से स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

अयं निगूढ़रमणीयोऽर्थो महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन समाप्ति विदधता कवि वेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः।। ध्वन्यालोक लोचन पृ० ४२६

इस प्रकार हरिवंश की कथा इस प्रकरण में प्रस्तुत सभी कथाओं का मूल कही जा सकती है। हरिवंश के पाठालोचनात्मक संस्करण की भूमिका में श्री पी० एल० वैद्य ने इस सम्बन्ध में अत्यन्त समीचीन एवं महत्वपूर्ण टिप्पणी की है जो अपने मूल स्वरूप में इस प्रकार है। यहाँ उद्धृत है।

1- The critical taxt says that Rukmani had already heard about Krishna and his exploits and had fallen in love with him merely hearing reports (श्रवादेव) andKrishana also loved her merely on hearing og er beauty as stated in following.

रुक्मिणी त्वभवद्राजन रूपेणसदृशी भुवि।
चकमे वासुदेव स्तां श्रवादेव महाद्युतिः।
स चाभिनषित स्तस्याः श्रवादेव जनार्दनः।
तेजोवीर्य बेलोपेतः स मे भर्ता भविष्यति।। (हरि० ८७/१४-५)

When therefore the marriage between Sisupal and Rukmini was being arranged and was about to be celebrated.

Krishna got the news and decided to go Kundinpura with Yadawas and finding that Rukmini had just came out of the temple from her traditional worship of Indrani, he suddenly appeared on the scene, abducted and carried her to Dwarika, Rukmini, her brother persuad. Krishna had a fight with him, was defeated and had to return. Again this background I am sure the reader will find the narrative in passage no 20 as tane and fabricated by later bard, in fact according to the origional and genuine text of Harivansh, there was no Swayambar of Rukmini, no question of Krishna sitting inthe assembly of princes but a plain case of abduction of Rukmini by Krishna as both of them loved each other.

This from of marriage is known as राक्षस विवाह and is recomonded for Kshatriya cast and seems to eve to be a genuine account,

But volumes of myths has gathered about marriage of Krishna and Rukmini the Bhagawat Puran has further additions to the Swayambar myth. A Brahman messenger being highly poetic letter from Rukmini to Krishna. That she deeply loves him and does not like her merriage with Sisupal (भा० p. 10/52/18-44)

The entire accounts as narreted in the origional,Harivansh. The inter polated passage no 20 in the vulgate and the account as given in the /B Hagawat puran throw a flood of light on question how myths grow against the the black ground of the facts.

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता लोकप्रावृत्तिका नराः।।

We thus have in Harivansh the oldest of the Krishna myth which playcs an important role in Indira myth. [93]

पी० एल० वैद्य की उपर्युक्त समीचीन टिप्पणी प्रेरणा देती है कि रुक्मिणी हरण से सम्बद्ध अन्य पौराणिक साक्ष्यों के अध्ययन के पूर्व हरिवंश द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण इतिवृन्त का सम्यक् अवलोकन करना अधिक उचित होगा। हरिवंश के प्रचलित संस्करणों के अनुसार कथा साक्षेप अधोलिखित रूप में देखा जा सकता है।

विदर्भ राज भीष्मक के रुक्मि तथा रुक्मिणी पुत्र एवं पुत्री थे। रुक्मिणी के सौन्दर्य की ख्याति क्रमशः विश्व भर में फैलने लगी थी। श्रीकृष्ण उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर अत्यधिक मुग्ध हो गये थे। दूसरी ओर रुक्मिणी भी उनके शौर्य, सौन्दर्य, माधुर्य आदि गुणों की प्रशंसा सुनकर अत्यन्त मुग्ध थी। उसकी अभिलाषा थी कि

९३. Harivansh- P.L. Vaidya Poona, Introduction. page XL II

असाधारण बलवीर्य सम्पन्न तेजस्वी जनार्दन ही मेरे पति हों, किन्तु रुक्मि परशुराम से ब्रह्मास्त्र मिलने के कारण महाप्रतापी कृष्ण से स्पर्धा के भाव से द्वेष रखता था। श्रीकृष्ण ने उसके मित्र जरासन्ध के दामाद कंस का वध किया था। अतः द्वेष भाव अधिक था।

इसी कारण रुक्मिणी के मन के भाव को समझते हुए भी उसने कृष्ण से उसका विवाह हो, इस पर सहमत नहीं हुआ।

दूसरी ओर जरासंध ने भीष्मक से प्रस्ताव किया कि चेदिराज शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह कर दिया जाये। इसका कारण था कि पूर्व राज में चेदिराज वसु को वृहद्रथ नामक पुत्र हुआ। उन्होंने मगध राज्य के एक भाग गिरिव्रज की स्थापना की उन्हीं के वंश में जरासंध उत्पन्न हुआ था। चेदिराज दमघोष भी उसी वंश के थे। इस प्रकार दमघोष एवं जरासंध में रक्त सम्बन्ध था। दमघोष को शिशुपाल आदि ५ पुत्र हुए।

वे सभी वासुदेव की बहन ऋतुगर्भा से उत्पन्न हुए थे। दमघोष ने अपने रक्त सम्बन्धी जरासंध के सहायतार्थ शिशुपाल को दे दिया था। तबसे जरासंध शिशुपाल वृष्णियों से बैर रखता था।

भीष्मक जरासंध के प्रस्ताव पर सहमत हो गए, किन्तु विवाह की तैयारी होने पर बलराम एवं कृष्ण ससैन्य उपस्थित हो गये। रथकौशिक उन्हें विविध पूर्वक भवन ले गये। विवाह के एक दिन पूर्व रुक्मिणी इन्द्राणी की पूजा के लिए देवमन्दिर गई। देवालय के निकट सहसा कृष्ण की दृष्टि रुक्मिणी पर गई। कृष्ण धवलदुकूल वासा रूक्मिणी को देखकर अधीर हो गये। उसी समय बलराम से मंत्रणा करके रुक्मिणी हरण का निश्चय कर लिया। जब वह देवी मन्दिर से बाहर आ गयी तब कृष्ण वहाँ पहुँचे एवं उन्हें रथ में बिठाकर ले आये।

जरासंध शिशुपाल आदि को इसका ज्ञान होने के पश्चात वे सेना लेकर कृष्ण

का पीछा करने लगे। युद्ध में कृष्ण सभी को परास्त कर रुक्मिणी को लेकर चले आये। रुक्मि इस संवाद को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ एवं प्रतिज्ञा की कि वह कृष्ण का वध करके रुक्मिणी को साथ लेकर ही घर आयेगा। रुक्मि ने सेना सहित प्रस्थान किया।

नर्मदा के तट पर उससे श्रीकृष्ण की भेंट हुई। कुद्ध रुक्मि कृष्ण पर बाण बर्षा करने लगा। कृष्ण ने उसकी सारी सेना को पराजित कर शर प्रहार से रुक्मि के वक्ष का विदीर्ण कर डाला। रुक्मि आर्तनाद करके गिर पड़ा एवं मूर्च्छित हो गया।

रुक्मि के प्राण संकट में देखकर रुक्मिणी ने कृष्ण से अपने भाई के प्राणों की भिक्षा मांगी। कृष्ण रुक्मि को अभय दान दे कर अपने नगर की ओर चल पड़े।

रुक्मि प्रतिज्ञा न पूरी न कर पाने के कारण कुण्डिनपुर नहीं लौटा बल्कि वहीं पर वृहतपुरी नगर बसा कर रहने लगा। बाद में वह नगर भोजकट के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

द्वारका पहुँच कर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का पणिग्रहण किया। उनसे चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महाबल, प्रधुम्न, सुषेण, चारुगुप्त, चारुबाहु, चारुविन्द, सुचारु ,भद्रचारु, चारु ये दशपुत्र एवं चारुमती नाम्नी कन्या हुई।

बहुत काल पश्चात रुक्मि की पुत्री शुभांगी ने प्रद्युम्न को स्वयंवर सभा में वरमाला पहनाई।

हरिवंश के मूल कथा का गुम्फनः-

रुक्मिणी कृष्ण विवाह को सर्वाधिक एवं काल की दृष्टि से प्रथम महत्व हरिवंश पुराण में प्राप्त होता है। हरिवंश में इस प्रकरण का विवरण १५ सर्गों में किया जाना विशेष रोचक तथ्य है। यह प्रकरण स्वयं में एक ऐतिहासिक दस्तावेज होने के साथ-साथ महाकाव्यीय परम्परा का प्रथम रूप है।

विष्णु पर्व का ४७ से ६१ सर्ग रुक्मिणी हरण प्रकरण का विस्तृत वर्णन करना है। सर्गक्रम से इसकी कथा गुम्फन शैली का संक्षिप्त निदर्शन इस प्रकार किया जा सकता है।

अध्याय ४७ - के अन्तर्गत--

श्रीकृष्ण राज्य सभा में पधारे। उनके सभासद श्रेष्ठजनों ने सूचना दी कि आज से तीन दिन पश्चात कुण्डिनपुर में विदर्भराज की परम सुन्दरी कन्या रुक्मिणी का स्वयंवर होना है। उसमें भाग लेने के लिए अनेक राजा अपनी ससैन्य सेनाओं के साथ वहाँ पहुँच रहे हैं। इस समाचार के शब्द श्रीकृष्ण के शल्य की भाँति चुभे। वे तत्काल कुण्डिनपुर की ओर चल पड़े और सायंकाल तक कुण्डिनपुर पहुँचे। वहाँ पूरा नगर शिविरों से भरा दिखाई दिया। उस अद्‌भुत दृश्य को देखकर श्रीकृष्ण राज्य सभा में आ गये। [६४] उन्होंने शिविरों में निवास कर रहे भूपों को प्रभावित करने के लिए गरुड़ का स्मरण किया। गरुड़ विशाल विमान की भांति गर्जन के साथ उपस्थित हुए। श्री गरुड़ के भूमि पर उतरने के समय उनके पंखों की हवा से एक आँधी सी चली जिससे सारे शिविर अस्त व्यस्त हो गये। श्रीकृष्ण ने उन्हें कैशिक के भवन जाने की आज्ञा दी।

जब श्रीकृष्ण अपनी सेना के साथ नगर द्वार तक पहुँचे तब राजनीति के महान पण्डित राजा कैशिक ने उनका स्वागत पूजन कर पुर में ले गये। [६५]

६४- प्राप्ते राज समाजे तु शिविराकीर्ण भूतले।
रंग सुविपुलं दृष्ट्वा राजसीं तनुमाविशत्।।
वित्रासनार्थं भूपानां प्रकाशार्थं पुरातनम्।
मनसा चिन्तयामास वैनतेयं महाबलम् ।। (हरि २/४७/२६-२७

६५- वही २/४७/१-४५

अध्याय ४८ में-

श्रीकृष्ण एवं गरूड़ के आगमन से सभी राजा चिन्तित है। सभी भीष्मक की विशाल सभा में उपस्थित हुए। जरासंध ने श्रीकृष्ण के वराह नृसिसंह, वामन, परशुराम, राम के रूप में हुए अवतारों एवं पराक्रम का वर्णन किया, एवं बाल्यकाल में श्रीकृष्ण द्वारा किये गये प्रलम्ब, कंस वध आदि अद्भुत कर्मो का वर्णन किया। गोमन्त पर्वत पर हुए युद्ध का स्मरण कराते हुए कहा कि इसका उपस्थित होना एक महा विघ्न है। अतः सोच विचार कर कुछ करना चाहिए। क्योंकि यह रुक्मिणी को प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकता है। सुनीथि ने जरासंध का वर्णन करते हुए कहा कि जब श्रीकृष्ण पैदल थे तब भी गोमन्त ने हमारी समूची सेना का ध्वस्त कर डाला था। यहाँ तो वे गरूड़ के साथ आये है। उनका आना स्वयंवर में आये अन्य सभी राजाओं के लिए महान् विघ्न ही है। [६६]

अध्याय ४९ के अन्तर्गतः-

करुष दस के राजा दन्तवक्त्र ने विनम्रतापूर्वक जरासंध का विरोध किया। उसका कथन था कि जिस प्रकार हम सभी स्वयंवर के प्रतिभागी है। उसी प्रकार वासुदेव भी पधारे है।

इनमें कोई आश्चर्य दोष या गौणता की कोई बात नहीं है। हम सभी इसी निमित्त आये है। गोमन्त युद्ध की हार में जनार्दन का कोई दोष नहीं है। वे तो हमसे वित्रस्त होकर वहाँ रहते थे। किन्तु हमने वहाँ भी आक्रमण किया। उन्होंने पदाति ही हमको हराया। कंस ने उन दोनों भाइयों का वध करने के लिए बुलाया था एवं युद्ध में

६६- वही २/४८/१-५०

मारा गया। इसमें कृष्ण का क्या दोष ? अच्छा होगा कि हम बैर भाव त्याग कर उन्हें अर्ध्य प्रदान करें। इस पर शाल्व ने विरोध किया कि कृष्ण से डरकर मैत्री नहीं करनी चाहिए। वे विष्णु के अवतार हैं, अतः उनसे युद्ध में परलोक सुधरेगा। फिर वे संग्राम के लिए तो नहीं आये है। कन्या किसी को भी वरण कर सकती है, इससे विग्रह क्यों होगा, प्रीति ही बढ़ेगी। [६७]

"भीष्मक बोले कि रुक्मी मदान्धता के कारण कृष्ण से द्वेष रखता है। उन्हें वर के रूप में नहीं देखना चाहता। अतः युद्ध तो निश्चित ही है, किन्तु महाबली कृष्ण से युद्ध होने पर उसके प्राण जायेंगे, जो मैं नहीं चाहता।

उन्होंने करवीपुर के मान योद्धा ऋंगाल को क्षणमात्र में नष्ट कर दिया था। बचपन से ही वे महापराक्रमी है।

इस प्रकार बलाबल का विचार कर भीष्मक ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए अभिषेक का निश्चिय किया। इस पर कुछ राजा प्रसन्न, कुछ दीन कुछ उदासीन रहे। इसी समय क्रथ-कैशिक के समीप से दूत उपस्थित हुआ। [६८]

पचासवें का कथानक--

यह अध्याय रुक्मिणी विवाह प्रकरण में अधिक महत्वपूर्ण है। पुराणकार यहाँ पूर्व वृन्तान्त का प्रवर्तन करते हैं। कथा का आरम्भ जनमेजय के प्रश्न से होता है। जनमेजय का प्रश्न था कि वे कौन से कारण थे कि महाबली श्रीकृष्ण विदर्भ में अवमानना के बाद भी शान्त रहे थे। [६९] इसका उत्तर वैशम्पायन ने दिया।

६७- वहीं २/४६/१-३८

६८- वहीं २/४६/३६-६७

६९- वहीं २/५०/१-३

जब श्रीकृष्ण कैशिक के राजभवन में पहुँचे तब उसे भीष्मक की सभा में आये जरासंध आदि के मनोभावो के कारण चिन्ता हुई अतः उसने दूत को पत्र देकर भीष्मक तक संदेश भेजा कि श्रीकृष्ण के स्वागत अभिषेक एवं सभा में उचित आसन की व्यवस्था की जानी चाहिए। उनके हृदय में किसी के भी प्रति वैर भाव नहीं है। अतः भीष्मक स्वयं ही श्रीकृष्ण का स्वागत करें। इस अवसर पर सुनीथ, रुक्मि, शाल्व एवं जरासंध सभाभवन में रहें।[१००]

यहाँ दूत के रूप में चित्रांगत गंधर्व को दर्शाया गया है एवं संदेश दाता स्वयं देवराज इन्द्र कहे गये है।

भीष्मक इस संदेश पर ससैन्य श्रीकृष्ण के आवास तक पहुँचे। श्रीकृष्ण की सर्वांगपूर्ण सभा में उपस्थित होकर उनका अनुनय विनय किया एवं समझाया कि स्वयंवर का प्रायोजन रुक्मि के हट के कारण किया जा रहा है।[१०१]

श्रीकृष्ण बोले यदि रुक्मि इस बालपन में इतना अविनयी है तो प्रौढ़ होने पर कैसा अविनयी होगा ? आप इसके दुराचरण से अनभिज्ञता प्रकट कर इस महान कुलीन राजाओं कि सभा में असत्याचरण कर रहे हैं। उसने इतना बड़ा आयोजन कर डाला और आपको इसका ज्ञान नहीं हो सका। इस पर सन्देह होता है। मेरे आगमन को आपका समस्त राज-समाज बलात विघ्न मान रहा है तो मुझे छोड़कर किसी अन्य योग्य को ही कन्यादान कर दो। लेकिन लक्ष्मी रूपा रुक्मिणी का स्वयंवर नहीं होना चाहिए था।

भीष्मक अनेक प्रकार से अनुनय विनय करता रहा। कृष्ण ने कहा आप कन्या दान करें या न करें यह आपका अधिकार है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि मुझे

१००- वही २/५०/३-५७

१०१- वही २/५०/५८-८८

ही दें औरो को न दें। इस प्रसंग में तो सौभाग्य मूर्ति रुक्मिणी ही निर्णय करेगी, किन्तु इतने राजाओं के समक्ष उसे वर चुनने के लिए उपस्थित करना अनुचित है। योग्य वर के साथ धर्मपूर्वक उसका दान होना चाहिए था।

रुक्मिणी नाम ते कन्या न सा प्राकृत मानुषी।
श्रीरेषा ब्रह्मवाक्येन जाता केनापि हेतुना।।
न च सा मनुजेन्द्राणां स्वयंवर विधि - क्षमा।
एकात्वेकाय दाताव्या इति धर्मो व्यवास्थितः।।
न च तां शक्यसे राजल्लक्ष्मी दातुं स्वयंवरे।
सदृश्यं वरमालोक्य दातुमर्हसि धर्मतः।।

इसके अतिरिक्त मैं यहाँ युद्ध के लिए तो नहीं आया था। कहीं भी सेना के साथ में युद्ध करने के लिए नहीं जाता, अपितु एकाकी ही जाता हूँ, फिर विघ्न क्यों मान रहें है ? भीष्मक के अनुनय विनय करने पर कृष्ण ससैन्य मथुरा प्रस्थान करने को उद्यत हुए। एक कोस तक जाने के पश्चात अन्य राजाओं को स्वयंवर में वापस जाने की आज्ञा दे दी। भीष्मक ने उनकी स्तुति की एवं उपहार देकर उन्हें विदा दी। [१०२]

अध्याय ५२ का कथानक --

कृष्ण के चले जाने पर भीष्मक ने अपनी सभा में कृष्ण के प्रताप का वर्णन किया एवं स्वयंवर को अनुचित बताया। तब शाल्व ने भीष्मक से कहा कि वे युद्ध की चिन्ता न करें। यह ठीक है कि आपके पुत्र से बलराम-श्रीकृष्ण बली है किन्तु यवन नरेश कालयवन श्रीकृष्ण को जीत सकता है। वह शिव भक्त है एवं मथुरा के राजाओं से

१०२- वही- २/५१/१-७१

अबध्य है। उसे यहाँ बुला लीजिये। जरासंध ने भी इसका समर्थन किया एवं दूत को आकाश मार्ग से जाने की सलाह दी। दूत गया।

रुक्मिणी को यह समाचार मिला कि कृष्ण के आने के कारण दोष मानकर स्वयंवर स्थगित किया है। तो उसने अपनी सखियों के बीच लजाते श्रीकृष्ण को ही वरण करने की बात कही।[१०३]

अध्याय ५३ के अन्तर्गत-

दूत के रूप में शाल्व कालयवन के यहाँ पहुँचे एवं जरासंध का सन्देश दिया कि मथुरा नरेश श्रीकृष्ण ने गोमन्त में हम लोगों का अत्यन्त भीषण पराजय दी है। उस कृष्ण को केवल आप ही जीत सकते हैं क्योंकि अपको शिव वरदान प्राप्त है। अतः मथुरा प्रस्थान कर विजय प्राप्त करें एवं कृष्ण एवं बलराम को बन्दी बनाकर यश प्राप्त करें।[१०४]

अध्याय ५४ में--

कालयवन ने कहा कि कृष्ण के विग्रह के लिए अनेक राजाओं की प्रार्थना सुनकर मैं धन्य हुआ। उस त्रिलोकय विजयी से हारने पर भी मेरी जीत ही है। अतः मैं आज ही शुभ मूहूर्त में मथुरा पर आक्रमण की योजना बनाता हूँ।

कालयवन ने आक्रमण के लिए प्रस्थान किया एवं शाल्य ने प्रसन्न भाव से वापस प्रस्थान किया।[१०५]

१०३- वही २/५२/१-५१

१०४- वही २/५३/१-५७

१०५- वही २/५४/१-१०

अध्याय ५५ का कथानक --

गरुड़ श्रीकृष्ण की अनुज्ञा से पश्चिम की ओर कुशस्थली नगर गए एवं कृष्ण मथुरा में प्रविष्ट हुए। वहाँ उनका विविध स्वागत सत्कार हुआ। श्रीकृष्ण अब अन्तपुर गए तभी गरुड़ मथुरा वापस आये एवं श्रीकृष्ण के साथ एकान्त मंत्रणा की। उन्होंने कुशस्थली के द्वारवती का मनोरम वर्ण किया एवं वहीं निवास बनाने की सलाह दी।

श्रीकृष्ण ने भोजराज से सलाह कर निर्णय लिया। [१०६] इसमें श्रीकृष्ण के स्वागत एवं द्वारवती के वर्णन में कवित्वपूर्ण विस्तार है।

अध्याय ५६ का कथानक -

सभा में इस प्रकरण पर विचार हो रहा था कि मथुरा राजधानी के लिए असुरक्षित है। अतः अन्यत्र राजधानी बनायी जानी चाहिए।

उसी समय कालयवन एवं जरासंध की संयुक्त सेना के आक्रमण का समाचार प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण उसे उचित समय मानकर पश्चिम दिशा की ओर ससैन्य चल पड़े एवं द्वारवती पुरी पहुँच गये। [१०७]

अध्याय ५७ की कथा -

जब कालयवन की सेना का समाचार श्रीकृष्ण को मिला था, तब श्रीकृष्ण ने कालयवन के पास घड़े में विषैला सर्प भरकर दूत से भेजा था। कालयवन ने कृष्ण का भाव समझकर उसमें चीटियाँ भर कर वापस भेजा, जिन्होंने सर्प को काट कर समाप्त

१०६- वही- २/५५/१-२५

१०७- वही २/५६/१-३५

कर दिया एवं कृष्ण के पास अपनी मुहर लगाकर भेज दिया।

इसके पश्चात कृष्ण द्वारका चले गये वहाँ बान्धवों एवं सेनाओं को सुस्थित कर पुनः मथुरा पैदल ही आये। कालयवन ने उन्हें अकेला पाकर पाकर पकड़ना चाहा किन्तु वे मुचुकुन्द की गुफा में चले गये। कृष्ण के धोखे में कालयवन ने मुचुकुन्द पर प्रहार किया एवं शाप के कारण मुचुकुन्द की दृष्टि से ही भस्म हो गया। तदनन्तर मुचुकुन्द से विदा लेकर कृष्ण वापस द्वारका पहुँच गये।[१०८]

अध्याय ५८- में --

[१०९] द्वारका निर्माण एवं उसके वैभव का विस्तार से वर्णन किया गया है।

अध्याय ५९- का कथानक --

उसी काल में जरासंध ने राजाओं को एकत्र कर योजना बनाई की भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का विवाह चेदिनरेश शिशुपाल से कराया जाय।

इस प्रकरण में दक्षिणापथ एवं उत्तरापथ के अनेक राजा जरासंध के साथ हो गये।

इस अध्याय में भीष्मक शिशुपाल एवं जरासंध का मथुरा एवं कृष्ण के सम्बन्धों का भी वर्णन किया गया है। क्योंकि कृष्ण ने जरासंध के जमाता कंस की हत्या की थी। अतः वह कृष्ण से द्वेष रखता था। उसे कृष्ण के रुक्मिणी के प्रति अनन्य अनुराग का ज्ञान हो चुका था। अतः उसने भीष्मक पर शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह

१०८- वही २/५७/१-७०

१०९- वही २/५८/१-८४

के लिए दबाव डाला एवं भीष्मक राजी हो गये।

जरासंध दन्तवक्त एवं शिशुपाल के लेकर विदर्भ पहुँचा। कृष्ण भी पुनः विदर्भ पहुँचे क्योंकि उनके बुआ के लड़के शिशुपाल का विवाह होना था। क्रथकैशिक ने सबका सत्कार किया।

विवाह के एक दिन पूर्व रुक्मिणी चार घोड़ों के रथ पर बैठकर इन्द्राणी का पूजन करने के लिए महल से बाहर आई उनके साथ सेना भी थी। श्री कृष्ण ने उनके अदभुद लावण्य को देखा एवं मन से अत्यन्त अधीर हो उठे। बलराम से मन्त्रणा करके रुक्मिणी का अपने रथ पर बैठाकर चल पड़े एवं बलराम ने अन्य रक्षकों को रोक लिया। युद्ध का भार यादवों पर डाल कर श्रीकृष्ण शीघ्रता से द्वारका की ओर प्रस्थान कर गये।

इधर दन्त्रवक्र जरासंध शिशुपाल आदि कृष्ण के पीछे उन्हें मारने की इच्छा से निकल पड़े किन्तु उन्हें महाबली यादवों ने युद्ध के लिए ग्रहण कर लिया एवं भीषण युद्ध होने लगा।[११०]

अध्याय ६० में --

रुक्मी को जब समाचार मिला तो वह क्रुद्ध होकर सेना के साथ कृष्ण की ओर गया। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। कृष्ण ने अकेले ही उसकी सारी सेना को तहस नहस कर डाला।

हरिवंश के कथा गुम्फन का वैशिष्ट्य --

१- हरिवंश के अनुसार (८७/१२) विन्ध्याचल के दक्षिण में विदर्भ देश के

११०- वही २/५६/१-८०

कुण्डिनपुर के राजा भीष्म अगस्त्य द्वारा सुरक्षित विस्तृत भूभाग का राजा था।

२- भीष्मक के एक ही पुत्र एवं पुत्री का उल्लेख है।

३- हरिवंश के अनुसार रुक्मी को परशुराम की कृपा से अनेक दिव्यायुधों की प्राप्ति हुई थी। उसके पास ब्रह्मास्त्र भी थी। इन शस्त्रो की उपलब्धि से मदान्ध होकर वह कृष्ण से द्वेष भाव रखता था। (८७/१३)

४- रुक्मिर्णा एवं कृष्ण का परस्पर पूर्वानुराग दोनों के परस्पर रूप में गुण के श्रवण के कारण था। (८७/१४,१५)

५- जरासंध कुछ पूर्व कारणो से चेदिनरेश दमघोष के प्रति कृतज्ञता का भाव रखता था। वह शिशुपाल को पुत्रवत् मानता था। इसी कारण उसके विवाह का प्रस्ताव भीष्मक से किया था। (८७/२५)

६- इस पुराण का कथन है कि बलराम एवं अपनी बुआ एवं शिशुपाल की माता श्रृतश्रवा की प्रसन्नता के लिए शिशुपाल के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए कुण्डिनपुर आये थे। वहाँ पर क्रथकैशिक ने उनकी सुचारू रूप से सेवा की थी।(८७/२६,३०)

७- रूक्मिणी हरण के समय रुक्मिणी की माता की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं है।

८- रुक्मिणी का विवाह पूर्व इन्द्राणी की पूजा के लिए जाना वर्णित है।(८७/३२)

६- शची के पूजन के बाद बाहर आने पर रुक्मिणी को कृष्ण ने प्रथम बार देखा एवं तत्काल बलराम से परामर्श कर हरण कर लिया। (८७/३६-४१)

१०- रुक्मिणी के हरण काल में उसके अगंरक्षकों ने प्रतिरोध किया जिन्हें बलराम ने वृक्षादि से आहत किया एवं कृष्ण वहाँ सह रथ लेकर निकल गये।

११- हरिवंश में बलराम आदि का जरासंध शिशुपाल दन्त्रवक्त्रादि राजाओं के

साथ युद्ध का वर्णन विस्तार से हुआ है।

१२- जब रुक्मी ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया तब उसके साथ उसके भाई क्रथकैशिक आदि एवं विशाल सेना भी थी। (८८/३,५)

१३- रुक्मी को कृष्ण से युद्ध न करने के लिए उसके उसके पिता ने अनेक प्रकार से समझाया था। (८८/३७, ४५)

१४- आलोचनात्मक संस्करण के अतिरिक्त हरिवंश की प्रतियों में द्वारका में श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के विवाह का विशद् वर्णन है।

इस प्रकार हरिवंश के वर्णन को सामान्यतः श्रीमद-भागवत् के पूर्व विवरण के रूप में देखने के पश्चात श्रीमद-भागवत् के परिष्कृत विवरण का अवलोकन एवं अनुसंधान प्रसंगानुकूल है।

क. श्रीमदभागवत में रुक्मिणी हरण की कथा का अनुशीलन -

कथा का स्वरूप- श्रीमदभागवत में इस घटना उल्लेख परीक्षित के प्रश्न से होता है। परीक्षित को इस वृतान्त का ज्ञान था। अतः उन्होंने प्रश्न किया----

भगवान् भीष्मक सुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् राक्षसेन विवाहेन उपयेम इति श्रुतम्।। (१०/५२/१७)

उत्तर में शुक्र ने रुक्मिणी हरण के वृतान्त इस प्रकार दिया। विदर्भ नरेश भीष्मक को पाँच पुत्र क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्ममाली, रुक्मि नाम से प्रसिद्ध एवं रुक्मिणी नाम्नी एक कन्या था।

रुक्मिणी अत्यन्त सुन्दरी एवं गुणवती थी। वह कृष्ण को ही अपना योग्य वर मानती थी। अन्य बन्धु-बान्धव भी उसके विचार से सहमत थे, किन्तु रुक्मि ने सभी का विरोध करते हुए शिशुपाल को रुक्मिणी का योग्य वर घोषित किया।

रुक्मिणी भाई के प्रस्ताव से दुखी थी। उसने तत्काल संदेशवाहक के रूप में एक ब्राह्मण को श्री कृष्ण के पास भेजा।[१११]

संदेशवाहक विप्र ने द्वारका पहुँच कर स्वागतादि उपचारों के पश्चात श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का संदेश सुनाया। संदेश का सारांश इस प्रकार है। [११२]

"हे कृष्ण केवल आप ही मुझे वरण करने लिए योग्य है। अतः मैं मन से आपको पति मान चुकी हूँ। सिंह का भाग कभी भी श्रगाल को नही मिल सकता। अतः आप ध्यान रखिये कि शिशुपाल मुझे स्पर्श भी न कर सके। आप विवाह के एक दिन पूर्व यादव सेना के साथ विदर्भ पधारें एवं शिशुपाल जरासंध आदि की सेना का मद चूर्ण करते हुए राक्षस विधि से मेरा वरण कर लीजिए।

मैं विवाह से एक दिन पूर्व कुलदेवी की पूजा करने जाऊँगी। उसी समय आप मेरा हरण कर लीजिए। यदि में आपको वरण न कर सकी तो अपने प्राण त्याग दूँगी।" ब्राह्मण द्वारा यह गुप्त संदेश सुनकर उसका हाथ अपने हाथों में लेकर श्रीकृष्ण मन्द स्मित के साथ बोले कि मैं भी रुक्मिणी के प्रति यही भाव रखता हूँ एवं मुझे रुक्मी के द्वेष भाव का भी ज्ञान है। मैं निश्चित ही उन उद्दृत राजाओं का मान-मर्दन कर राजकन्या का वरण करूंगा।

रुक्मिणी के विवाह में दो दिन ही शेष थे। अतः उन्होंने तत्काल को तीव्रगामी रथ लाने का आदेश दिया। स्वयं ब्राह्मण को साथ लेकर एक ही रात्रि में विदर्भ पहुँचे गये।

इधर भीष्मक विवाह की सभी तैयारियाँ पूर्ण चुके थे। दमघोष भी ससैन्य

१११- भाग० १०/५२-५४

११२- भाग० १०/५२/३७-४३ में विशेष देखें।

कुण्डिनपुर आ चुके थे। उस बारात में शाल्व, जरासंध, दन्तवक्त्र विदूरथ एवं पौण्ड्रक आदि शिशुपाल के हजारों मित्र उपस्थित थे। वे सभी कृष्ण के विरोधी थे। उन सभी ने निश्चय किया था कि यदि कृष्ण कन्या हरण के लिए आयेंगें तो सभी मिलकर युद्ध करेंगे। इसलिए वे सभी पूरी तैयारी से आये थे।

द्वारका में बलराम ने जब कृष्ण के एकाकी प्रस्थान एवं जरासंधादि से युद्ध के संभावना की बात सुनी तो तत्काल चतुरंगिणी सेना के साथ कुण्डिनपुर को प्रस्थान कर दिया।

भीष्मक - कन्या रुक्मिणी अत्यन्त बिह्लता से संदेशवाहक की प्रतीक्षा कर रहीं थीं। उसका धैर्य भंग होने लगा था कि वह विप्र पहुँच गया एवं रुक्मिणी को कृष्ण के आगमन एवं उनके प्रतिज्ञा की शुभ सूचना दी।

भीष्मक ने कृष्ण बलराम के आगमन की सूचना पाकर उनका उचित सत्कार करने के लिए पहुँच गये। श्रीकृष्ण की छवि देखकर भीष्मक विचार करने लगे कि रुक्मिणी केवल इन्हीं की स्त्री होने के योग्य है-

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा।
असावप्यनवधात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः।।
किञ्चित् सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टास्त्रलोककृत।
अनुगृहणात् ग्रहणातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः।। (भा० १०/५३/३७-३८)

सभी पुरवासी भी ऐसा ही कह रहे थे। तथी रुक्मिणी राजसैनिकों के साथ देवी के मन्दिर पहुँची । उसने देवी से प्रार्थना की एवं कहा--

नमस्ये त्वाम्बकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम्।
भूयात्पतिर्मे भगवान् कृष्ण स्तदनुमोदताम्।। भा० १०/५३/४६

इस प्रकार कृष्ण के लिए प्रार्थना करके पूजन समाप्त कर रुक्मिणी बाहर

आई। उसकी अनुपम छवि देखकर सारा राजसमाज मुग्ध हो गया। सभी के हाथों से शस्त्र गिर पड़े रुक्मिणी अपने रथ पर चढ़ना ही चाहती थी कि श्रीकृष्ण ने उसे उठा लिया एवं अपने रथ पर बिठाकर यादवी सेना के साथ चल दिये।

शिशुपाल के पक्ष के सभी राजाओं ने अत्याधिक अपमान का अनुभव किया एवं बोले---

अहो धिगस्मान्यश आन्तधन्वनां, गोपैर्हृतुं केसरिणां मृगैरिव।। (भा० १०/५३/५७)

इसके पश्चात शिशुपाल आदि राजाओं ने ससैन्य यादवों का पीछा किया एवं भीषण युद्ध में सभी पराजित हुए, किन्तु कृष्ण द्रोही रुक्मी को कृष्ण का व्यवहार असहनीय लगा। उसने प्रतिज्ञा की कृष्ण का वध किये बिना यह वापस नहीं होगा। कृष्ण के साथ रुक्मी का भीषण युद्ध हुआ एवं रुक्मी पराजित होकर धराशायी हो गया। रुक्मिणी ने भाई की दुर्दशा देखकर कृष्ण से प्रार्थना की कि वे उसे क्षमा कर दें। कृष्ण ने उसके वध का विचार त्याग दिया एवं उसे बांधकर उसके बाल मूंछ आदि काट दिये। संकर्षण को उसकी अवस्था पर दया आ गयी एवं उसे बन्धन मुक्त करा दिया। ततूपश्चात सभी रुक्मिणी के साथ द्वारका चले गये।

रुक्मी प्रतिज्ञा पूरी न कर पाने के कारण राजधानी वापस नहीं आया। उसने उसी पराजय स्थल पर ही भोजकट नामक नगर बसाया एवं रहने लगा। [११३]

रुक्मिणी हरण महाकाव्य एवं श्रीमद्भागवत के कथानक में साम्य एवं वैषम्य --

१- समग्ररूप से रुक्मिणी विवाह का वर्णन स्पष्ट रूप से श्रीमद्भागवत के ही विवरण पर आधरित है, किन्तु महाकाव्यत्व के निर्वाह एवं सरंचना के लिए कवि ने

११३- भा० १० / ५२-५४ अध्यायों का सारांश

कल्पना के सहारे कथा का विस्तार किया है।

२- श्रीमद्भागवत में कुण्डिनपुर के ऐश्वर्य या रुक्मिणी के जन्म के विषय में विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता किन्तु महाकाव्य में प्रथम सर्ग में कवि ने पूर्वक भीष्मक कुण्डिनपुर रुक्मिणी के जन्म एवं उसके वयः सम्प्राप्ति का सविस्तार वर्णन किया है। साथ ही अत्यन्त रूप गुण सम्पन्ना पुत्री के लिए भीष्मक की चिन्ता का भी वर्णन है।

३- श्रीमद्भागवत के अनुसार रुक्मिणी एवं कृष्ण ने एक दूसरे के विषय में कर्णाकर्णिकया सुना था। अतः एक दूसरे के प्रति पूर्वानुरक्त थे। यद्यपि रुक्मिणी हरण महाकाव्य में कवि ने इस तथ्य को परिमार्जित करके प्रस्तुत किया है। कवि ने नारद के आगमन की कवि कल्पना की एवं उनके मुख से श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं एवं गुणों का विस्तार से कविनिबद्ध प्रौढ़ोक्ति के माध्यम से वर्णन किया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के अलौकिक गुणों के श्रवण से रुक्मिणी में पूर्वानुराग अधिक तर्कसंगत बनाया गया है।

४- श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी का पूर्वानुराग २ श्लोको में व्यक्त किया गया है। इस पूर्वानुराग को कवि ने ५ सर्गों में, (सर्ग ३ से सर्ग ७ तक) में विस्तृत किया है। इसी प्रसंग में ऋतु रजनी उद्यान चन्द्रोपालम्भ कामोपालम्भ सात्विक भावों आदि के वर्णनों से महाकाव्य को समृद्ध किया गया है।

५- विवेच्य महाकाव्य में वर्णित है कि श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के विवाह के लिए भीष्मक ने राजसभा में प्रस्ताव किया एवं उनके अमात्य ने उनका समर्थन किया, किन्तु रुक्मि ने इस प्रस्ताव का विरोध किया एवं कृष्ण को अस्वीकार कर शिशुपाल के दूत भेजा। यद्धपि श्रीमद्भागवत में राजसभा या प्रस्ताव आदि का कोई भी संकेत नहीं मिलता है। यह वर्णन अवश्य है कि रुक्मि को यह ज्ञान था कि रुक्मिणी कृष्ण के प्रति असीम अनुरक्त है एवं उनसे विवाह करना चाहती है। तथापि उसने कृष्ण के प्रति द्रोहभाव के कारण विवाह के प्रति सहमति नहीं दी थी।

६- शिशुपाल एवं रुक्मिणी के विवाह की तैयारी की कथा दोनों ग्रन्थों में समान है।

७- रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण को श्रीकृष्ण के पास भेजने की भागवती कथा को कवि ने अधिक विस्तार दिया है। इसी प्रकरण में समुद्र वर्णन, सेतुवर्णन, द्वारका वर्णन पर दो सर्ग व्यय किये गये हैं।

८- ब्राह्मण के संदेश एवं प्रबोधन से श्रीकृष्ण का कुण्डिनपुर प्रस्थान। बलभद्र द्वारा कृष्ण के सहायतार्थ गमन वर्णन दोनों ग्रन्थों में समान है।

६- श्रीकृष्ण के कुण्डिनपुर पहुँचने पर भीष्मक द्वारा सत्कार एवं वार्ता का वर्णन भागवत में भी है कि महाकाव्य में वार्ता का स्वरूप एवं भाव एकदम भिन्न है।

१०- श्री कृष्ण ही रुक्मिणी के लिए योग्य वर है ऐसा सभी पुरवासी कर रहे थे। यह वर्णन भागवत में एक श्लोक में हैं जिसे कवि ने पूरे सर्ग में (१८वां सर्ग) में पुरजनोत्कंठ एवं कृष्ण प्रशंसा के रूप में वर्णित किया है।

११- कृष्ण के कुण्डिनपुर पहुँचने पर रुक्मि का चिढ़ना एवं शिशुपाल के साथ उसकी वार्ता का वर्णन भागवत में नहीं है तथापि शाल्व जरासंध आदि के द्वारा कृष्ण के आगमन एवं युद्ध के लिए सन्नद्धता का वर्णन श्रीमद्भागवत में प्राप्त होता है।

श्रीमद्भागवत की कथा का वैशिष्ट्यः-

१- भागवतकार ने इस विवाह को राक्षस विवाह की श्रेणी में स्वीकार किया है। जैसा कि रुक्मिणी अपने संदेश में कहती है।

राक्षसेनविधिनोद्रहवीर्यशुल्काम।। (भा० १०५२/४१)

इस प्रकार के विवाह को रुक्मि सहन नहीं कर सका जो स्वाभाविक ही लगता है।

रुक्मी तु राक्षसो आहं कृष्णद्विऽसहन स्वसुः।। (भाग० १०/५४/१८)

२- श्रीमद्भागवत में नारद के कुण्डिनपुर आगमन का उल्लेख नहीं किया गया है।

३- रुक्मिणी कृष्ण से विवाह करना चाहती थी किन्तु यह जानते हुए भी रुक्मी ने स्वयं शिशुपाल से विवाह का प्रस्ताव किया था। (१०/५२/२५)

४- श्रीमद्भागवत में रुक्मिणी के लिखित पत्र का स्पष्ट संकेत नहीं प्राप्त होता अपितु ऐसा प्रतीत होता है कि उसने ब्राह्मण संदेशवाहक द्वारा मौखिक ही संदेश भिजवाया था।(१०/५२/४०-४१)

५- भागवतकार ने रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से तय होने पर उसे चिन्तिता दुखार्ता मात्र प्रतिपादित किया है। उसमें दृढ़ प्रतिज्ञत्व का भाव कम दिखाई देता है।

६- रुक्मिणी स्वयं को दैवाधीन छोड़कर अपने संदेशवाहक पर ही विश्वस्त दिखाई देती है।

७- भीष्मक सुतस्नेह के कारण कन्या की इच्छा की उपेक्षा करते चिन्तित हुए है।(१०/५३/७)

८- रुक्मिणी गिरजा की पूजा करती है तथा उनसे प्रार्थना करती है कि कृष्ण ही उसके प्रति हों।

समीक्षाः-

उपर्युक्त विचार बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते है कि श्रीमद्-भागवत की रुक्मिणी हरणात्मक कथावस्तु में अन्य पुराणो की अपेक्षा अद्भुत सरसता तथा रोचकता के साथ तथ्यात्मकता एवं मौलिकता पाते हैं। जो इस प्रेमाख्यानक साहित्य का प्राणभूत है।

ख. भागवतेतर पौराणिक साहित्य में रुक्मिणीहरण कथा का अनुशीलन --

विष्णुपुराण एवं ब्रह्मपुराण :- विष्णुपुराण [११४] में एकादश श्लोकों में रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण के राक्षस विवाह का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण[११५] में भी एकादश श्लोक इस प्रकरण को समर्पित किये गये है। इन दोनों विवरणों में पूर्णतः साम्य है। मात्र शब्दों का ही अन्तर कहीं कहीं दिखाई देता है। इन दोनों पुराणों का विवरण प्रायः इस प्रकार है।

विदर्भ की कुण्डिनपुर नाम्नी राजधानी थी, जहाँ भीष्मक का राज्य था। उसे रुक्मिणी एवं रुक्मि नाम से दो संतानें थीं। द्वारका नरेश श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी परस्पर अनुरक्त थे, किन्तु श्रीकृष्ण की याचना करने पर भी रुक्मि के विरोध के कारण दोनों का विवाह नहीं हो पाया।

जरासंध ने भीष्मक को रुक्मि की सहमति से प्रस्ताव किया कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होना चाहिए। भीष्मक ने प्रस्ताव मान लिया शिशुपाल के सभी शुभचिन्तक राजा जरासंध आदि कुण्डिनपुर विवाह के निमित्त पहुँच गये।

दूसरी ओर बलराम एवं श्रीकृष्ण भी विवाह के एक दिन पूर्व ससैन्य कुण्डिनपुर पहुँच गये। विवाह के एक दिन पूर्व ही श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया। पौण्ड्रक विदूरथ शिशुपाल जरासंध आदि राजा श्रीकृष्ण को मारने के लिए उनके पीछे लगे, किन्तु बलराम ने उन सभी को रोककर मार्ग में ही पराजित किया।

रुक्मि ने प्रतिज्ञा की कि बिना श्रीकृष्ण का वध किये वह कुण्डिनपुर में प्रवेश

११४- वि० पु० ५/३५

११५- ब्रह्म० अ० १६०

नहीं करेगा। उसने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने उसके सारी सेना को नष्ट करके उसे भी धराशायी कर दिया।

इन दोनों पुराणों की निम्नलिखित विशेषतायें कहीं जा सकतीं है।

१- इनमें इस विवाह को स्पष्ट रूप से राक्षस विवाह की श्रेणी में रखा जा सकता है। (११६)

२- रुक्मिणी एवं कृष्ण के पूर्वानुराग मात्र का ही संकेत दिया गया है। उनके परस्पर दर्शन की बात नहीं कही गयी है। (११७)

३- श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के लिए प्रस्ताव किया था, इसका संकेत भी प्राप्त होता है इसे रुक्मि ने अस्वीकार कर दिया था। (११८)

४- जरासंध ने भीष्मक को शिशुपाल के लिए प्रेरित किया यह वर्णन किया गया है।(११९)

५- बलरामादि के साथ श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह को देखने कुण्डिनपुर आये थे यह वर्णन भागवत के विवरण से संगत नहीं है। (१२०)

६- विवाह के एक दिन पूर्व रुक्मिणी के हरण मात्र का उल्लेख किया गया है। इन्द्राणी या अम्बा के पूजन की बात का कोई संकेत नहीं है। (१२१)

११६- वि० पु० ५/२६/११

११७- वि० पु० ५/२६/२

११८- वि० पु० ५/२६/२

११९- वि० पु० ५/२६/५

१२०- वि० पु० ५/२६/५

१२१- वि० पु० ५/२६/६

७- इस वर्णन से प्रतीत होता है कि रुक्मिणी के हरण के ही समय पौण्ड्रक, दन्वक्त, विदूरथ, शिशुपाल आदि ने कृष्ण पर आक्रमण किया था। [१२२]

८- रुक्मिणी के हरण के पश्चात शिशुपाल ने भी जरासंध आदि के साथ मिलकर यादवों के साथ युद्ध किया था। [१२३]

१२२- वि० पु० ५/२६/७-८

१२३- वि० पु०

ब्रह्म एवं विष्णु पुराण के वर्णनों में वैषम्य--

इन दोनों पुराणों के विवरण तथागत रूप से पूर्णतः समान हैं। अधिकांश श्लोक भी समान हैं, मात्र शब्दों का अन्तर इस प्रकार है-

१- रुक्मीतस्या भवत्पुत्रो रुक्मिणी च वरानना (विष्णु पुराण)

रुक्मिणी तस्य दुहिता रुक्मी चैव सुता----(ब्रह्म पुराण)

२- भीष्मकस्यस पुरं जग्मु शिशुपाल प्रियैषिणाः (विष्णु पुराण)

---------- शिशुपालश्च कुण्डिनम्।। (ब्रहम पुराण)

इसके अतिरिक्त "अभिद्रुत" के स्थान पर "अनुद्रुत" शब्द का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

पद्म पुराण - पद्म पुराण में इस कथा का अवतरण यद्यपि हरिवंश पुराण के क्रम किया गया है। तथापि दोनो में पर्याप्त भेद दृष्टिगोचर होता है।

पद्मपुराणकार बलराम श्रीकृष्ण के द्वारका प्रवेश पर एवं निवास का वर्णन करने के पश्चात दोनों के विवाह के प्रकरण में इस कथा का अवतरण करते हैं। बलराम के विवाह का प्रकरण दो श्लोकों [१२४] में वर्णित करके पुनः रुक्मिणी एवं कृष्ण के विवाह का वर्णन किया गया है। कथा निम्न प्रकार वर्णित है।

विदर्भ के राजा भीष्मक अत्यन्त धर्मात्मा थे। उनके रुक्मि आदि पुत्र थे। उन सबमें उनकी कन्या थी रुक्मिणी। यह कन्या महालक्ष्मी के अंश से उत्पन्न हुई थी। यही

१२४- इक्ष्वाकुवंशसम्भूतो रैवतो नाम पार्थिवः।
कन्यादुहितरं स्वस्य सर्वलक्षण संयुताम्।।
रामाय प्रददो प्रीत्या रेवतीनामः।
उपयेमे विधानेन स रामस्तां च रेवतीम्।। पद्म उखं० -२४७ / १०-११

रामावतार के समय सीता थी।[१२५]

पूर्वकाल में जो राक्षस हिरण्यक एवं हिरण्याक्ष नाम से उत्पन्न हुए थे वहीं द्वापर में शिशुपाल एवं वन्तवक्त नाम से पैदा हुए। ये दोनो चेदिनरेश के वंश में उत्पन्न हुए एवं दोनों अत्यन्त पराक्रमी थे।

भीष्मक का पुत्र रुक्मिणी को शिशुपाल को देना चाहता था किन्तु रुक्मिणी अपनी बाल्यावस्था से ही विष्णु के प्रति अत्यन्त अनुरक्त थी। यह शिशुपाल को पति के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहती थी।

वह कृष्ण को पति के रूप में मानकर ही देवताओं की पूजा कन्यापूजा आदि करतीं थी। अपनी सम्पूर्ण तपश्चर्या का लक्ष्य रुक्मिणी श्रीकृष्ण प्राप्ति ही मानती थी।

किन्तु रुक्मि शिशुपाल से विवाह की तैयारी करने लगा। तब विवश होकर रुक्मिणी ने पुरोहित के पुत्र को संदेश देकर द्वारका भेजा।

उसने द्वारका पहुँच कर एकान्त में श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का प्रेम संदेश दिया।

विप्र का संदेश सुनकर बलराम एवं श्रीकृष्ण दोनों ने शस्त्राशस्त्र से सुसज्जित होकर आकाशगामी रथ में मुख्य सारथी दारुक के साथ विदर्भ की ओर प्रस्थान किया।

विदर्भ में सभी देश में राजा जरासंध आदि शिशुपाल के विवाह में आये हुए थे।

विवाह से पूर्व स्वर्णालंगण आदि से सुसज्जित होकर रुक्मिणी दुर्गा देवी के अर्जन के निमित्त नगर से बाहर निकली थी। उसी समय श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया एवं अपने नगर की ओर चल पड़े।

१२५- राधवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि (वही श्लोक १५ पूर्वार्ध)

इस समाचार से जरासंध आदि राजा अत्यन्त क्रुद्ध हुए। वे सभी रुक्मि के साथ चतुरंगिणी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा करने लगे।

किन्तु इन विरोधी राजाओं का सामना करने बलराम पहुँच गये। उन्होंने अपने मूसल, हल आदि शस्त्रों से सारे शत्रुओं को धाराशायी करना प्रारम्भ कर दिया। रुक्मि किसी प्रकार बच कर कृष्ण के पास तक पहुँच गया। कृष्ण एवं रुक्मि में घोर संग्राम हुआ। श्रीकृष्ण ने एक ही वाण से उसका रथ, अश्व, सारथी, ध्वज पताका आदि काट दिया। रुक्मि रथहीन होकर खड्ग लेकर कृष्ण की ओर दौड़ा। श्रीकृष्ण ने उसका खड्ग भी काट दिया। खड्गहीन होने पर भी उसने कृष्ण के वक्ष पर मुष्टि प्रहार करना चाहा, किन्तु श्रीकृष्ण ने उसे पकड़कर बांध दिया तथा तेज छुरे से उसका मुण्डन करके छोड़ दिया। हारने के बाद रुक्मि वहीं नगर बसा कर रहने लगा, अपने नगर नहीं लौटा।[१२६]

पद्मपुराण के कथानक का वैशिष्ट्यः-

१- पद्म पुराण की कथा पूर्णरूप से कृष्ण के परमात्म रूप का निर्देशन करती है।

२- रुक्मिणी को ब्रहम या विष्णु की अविभाज्या माया या लक्ष्मी के रूप में चित्रित किया गया है।

३- रुक्मिणी को ही रामावतार के समय की सीता का पुनरागमन एवं शिशुपाल तथा दन्त्वक्त को हिरण्यक एवं हिरण्कश्चिप राक्षसों का पुर्नजन्म बताया जाना भक्ति की दृढ़ता को घोषित करता है।

१२६- पद्म० उ० ख० अ० २४७

४- पद्मपुराण के विवरण में रुक्मिणी को बाल्यावस्था से ही विष्णु जो अब कृष्ण के रूप में अवतरित थे, के प्रति उच्चतर भाव से अनुरक्त बताया गया है।

५- वहाँ संदेश वाहक पुरोहित का पुत्र बताया गया है।

६- रुक्मिणी का हरण मंदिर के बाहर न होकर पूजनार्थ नगर से बाहर आने पर ही चित्रित किया गया है।

देवी भागवत ---

देवीभागवत महापुराण में मात्र एक श्लोक में इस कथा का संकेत प्राप्त होता है।

अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपाल स्वयंवरात्।
राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः।। (दे० भा० ४/२४/४०-८)

देवीभागवत के विवरण में प्रमुखतम विशेषता यह दृष्टिगोचर होती है कि कृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण स्वयंवर से होना बताया गया है। यद्यपि अन्य पुराणों में मुख्यतः हरिवंश एवं श्रीमद्भागवत में स्वयंवर के संयोजन का उल्लेख नहीं है, अपितु शिशुपाल से रुक्मिणी का विवाह तय होने की बात बतायी गयी है। रुक्मिणी कृष्ण विवाह को देवी भागवत भी राक्षस-विवाह की संज्ञा देता है।

समीक्षाः-

इस प्रकार हरिवंश के अतिरिक्त अन्य सभी पुराणों में इस कथा के ऐतिहासिक पक्ष को सुरक्षित रखते हुए उसे काव्यात्मक कल्पानाओं से सुसज्जित करके कुछ इस प्रकार सरस और प्रभावी रूप में उपस्थित किया गया है। जिससे कृष्ण भक्तों को अपने आराध्य की लीला का औचित्य भली भांति समझ में आ सके। विवाहान्तर्गत

स्वयंवर का उल्लेख रचनाकार की वर्णन शैली एवं वक्ता की विविधता के कारण ही हृदयाकर्षक होता रहा होगा। जो वस्तुतः इस प्रेमाख्यान के माध्यम से अप्रतिम भारतीय संस्कृति के वैशिष्ट्य को प्रकारान्तर से रम्य रूप में रेखांकित करता है।

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

संस्कृत के महाकाव्य साहित्य में रुक्मिणी-हरण कथा का अनुशीलन

पूर्वाध्याय में स्पष्ट विवेचित है कि रुक्मिणी-श्रीकृष्ण विवाह का प्रकरण अत्यन्त प्राचीन काल से ही महाकाव्यीय तत्वों से अलंकृत होने लगा था। पुराणों में भी इस कथा में विभिन्न प्रकार की काव्यात्मक कल्पनायें स्थान पा चुकीं थीं। इसी कारण विभिन्न विवरणों हरण-कथा के परिवेश के वर्णनों में परस्पर भेद दृष्टिगोचर होता है।

जो महाकाव्य संस्कृत साहित्य में इस कथा को आधार बनाकर रचे गये उनके लिए विभिन्न पुराणों में अनेक तरह से प्रस्तुत सामग्री आधार के रूप में पूर्वतः उपस्थित थी। जो महाकाव्यीय कल्पनाओं में प्रेरणा भी प्रदान करती थी। अतः जो काव्य साहित्य प्राप्त है उनमें इस कथा के अनेक रंग दृष्टिगोचर होते है। प्रस्तुत अध्याय में अतिशय महत्वूपर्ण महाकाव्यों की सामग्री का इसी दृष्टि से अवलोकन किया जायेगा। अध्ययन की दृष्टि से इन महाकाव्यों या रूपकों की प्रस्तुति में कथा की रोचकता के अनुसार की गयी उदात्त कल्पनाओं को ही क्रम का आधार बनाया जाना अधिक संगत मानते हुये उसी का अनुसरण किया जा रहा है।

अ. प्राचीन महाकाव्यों में रुक्मिणीहरण कथा का अनुशीलन

१. रुक्मिणी हरणम् (महाकाव्य)

सर्वप्रथम हरिदास सिद्धान्त वागीश द्वारा विरचित महाकाव्य से परिचित होते हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन कलकत्ता के ४१ के सूरिवर्ग में स्थित संस्कृत विद्यालय से हेमचन्द्र राय के संपादन के साथ हुआ।

इस महाकाव्य की कथा वस्तु में अन्य उपलब्ध काव्यों की अपेक्षा अत्यन्त दुर्लभ एवं अद्‌भुत काव्य शास्त्रीय विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। साथ ही भारतीय संस्कृति की मूल विशेषताओं से सम्बद्ध अनेक मान्यताएँ प्रामाणिक रूप से स्वीकृत एवं वर्णित हैं। इस महाकाव्य में विद्याध्ययन के काल में ही रुक्मिणी एवं उसके सभी भाईयों ने श्रीमद्-भागवत पुराण का श्रवण एवं उसमें अपना नाम आदि का श्रवण वर्णित है। यह भी सुना कि अम्बिकावन में रुक्मिणी का हरण कृष्ण ने किया था। इस प्रकार महाकवि ने पुराणों की परम्परात्मक शाश्वतता प्रतिपादित की है। कवि वर्णन करता है कि भागवत की कथा सुनने के पश्चात् ही रुक्मी को कृष्ण से द्रोह हो गया। वह यह विश्वास कर चुका था कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करेंगे। अतः उसने सभी प्रकार की युद्ध कला में निपुणता प्राप्त की। अध्ययन के पश्चात सभी भाई एवं रुक्मिणी अपने राजप्रासाद आये। भीष्मक ने सभी पुत्रों का विवाह आदि कर दिया तथा ज्येष्ठ पुत्र रुक्मी का राज्याभिषेक भी कर दिया। सम्पूर्ण दायित्वों को पूर्ण करने पर भी कन्या विवाह का दायित्व अब भी शेष था। विवाह योग्य कन्या की चिन्ता के कारण भीष्मक मन से शान्त नहीं थे।

राजपुरोहितों ने राजा को शान्तिलाभ के लिए वन में जाने की सलाह दी। राजा वन की ओर गये। वन में कुछ मुनियों ने उनका स्वागत किया। तपोभूमि में विचरण करते हुए राजा को देवर्षि नारद के दर्शन हुए। नारद ने राजा को अनेक प्रकार के उपदेश दिये। साथ ही नारद ने राजा की वास्तविक चिन्ता का भी रहस्य समझ लिया था, एवं उसके परिहार के लिए उन्होंने राजा को श्रीकृष्ण के साथ रुक्मिणी के विवाह की सलाह दी।

राजा ने अत्यन्त प्रसन्न मन से रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से करने के लिए अपने पुत्र को पत्र भेजा किन्तु पूर्वाग्रह से ग्रस्त रुक्मी ने नारद के वचन की अवहेलना

की एवं रुक्मिणी के लिए वरान्वेषणार्थ दूतों को चतुर्दिक भेजा।

रुक्मिणी भाई के इस व्यवहार पर अत्यन्त दुखी हुई एवं उसने एक ब्राह्मण के द्वारा कृष्ण के पास पत्र भेजा। रात्रि व्यतीत करके वह ब्राह्मण विविध मनोरम दृश्यों का अवलोकन करता हुआ द्वारका पहुँचा।

इस सप्तम सर्ग में कवि ने प्रकृति वर्णन की कुशलता का अत्यन्त सुन्दर परिचय दिया है। समुद्र के मध्य में स्थित द्वारका नगरी तक नाविक उस पत्रवाहक को ले गया।

ब्राह्मण को प्रतिहारी श्रीकृष्ण के निकट ले गया एवं उन्होंने श्रीकृष्ण को पत्र समर्पित किया। श्रीकृष्ण ने पत्र वाचन आरम्भ किया एवं पत्र पढ़कर तत्क्षण सारथी दारुक का आह्वान किया तथा उस ब्राह्मण के साथ ही विदर्भ पहुँचे। ब्राह्मण ने उन्हें गुप्त मार्ग से उपवन में पहुँचा दिया तथा स्वयं चला गया।

रुक्मिणी जब ब्राह्मण से मिली तो अत्यन्त उत्कंठा से सभी सखियों को भूल कर ब्राह्मण से बात करने लगी। उनका वार्तालाप सुनकर सखियों ने रुक्मिणी से खूब परिहास किया। उपवन में श्रीकृष्ण तथा सखियों के मध्य मनोविनोद हुआ तथा उनके बीच परिहास भी हुआ। सखियों ने उन्हें सलाह दी की गिरजापूजन के अवसर पर वे रुक्मिणी का हरण कर लें।

दूसरे दिन गिरिजापूजन के पश्चात् जब रुक्मिणी बाहर आई तब श्रीकृष्ण ने उनका हरण कर लिया। घोर संग्राम हुआ, विपक्षी पराजित हुए। बाद में युद्ध के लिए शिशुपाल तथा रुक्मि आदि गये। उस अवसर पर कृष्ण के सहायतार्थ बलराम भी सेना के साथ पहुँच चुके थे।

रुक्मि एवं शिशुपाल की सेना पराजित हुई। पराजय के अपमान के कारण रुक्मि अपने नगर वापस नहीं गया। श्रीकृष्ण सेना के साथ द्वारका पहुँचे एवं रुक्मिणी

के साथ विधिवत् विवाह किया।

श्रीकृष्ण के पिता वासुदेव इस राक्षस विवाह के कारण अत्यन्त दुखी एवं चिन्तित थे, किन्तु उसी अवसर पर भीष्मक भी पहुँच गये। वासुदेव ने अपने पुत्र की धृष्टता के लिए क्षमा याचना की, किन्तु भीष्मक ने अत्यन्त प्रसन्नता व्यक्त की।

भीष्मक के व्यवहार से शत्रु रुक्मि के पिता के विषय में सभी का संदेह नष्ट हो गया एवं उन्होंने रुक्मिणी का कन्या दान किया। कृष्ण ऊपर से लज्जित किन्तु मन से अत्यन्त प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहे थे।

रुक्मिणी परिणयम् --

इस श्रृंखला में द्वितीय महाकाव्य की रचना, यज्ञपति विद्याविनोद कविरत्न, राजाबहादुर उपाधियों से विभूषित अष्ट दुर्गों के स्वामी [१२७] विश्वनाथ देव वर्मा ने की थी। यह रचना १६०५ में हुई थी। विश्वनाथ देव वर्मा के सामन्त ने इसे कलकत्ता की उत्कल प्रेस से १६१२ में मुद्रित कराया था। ग्रन्थ की विशेषता प्रधान महिषी श्रीमती राधाप्रिय द्वारा की गई विस्तृत व्याख्या मानी जा सकती है। यह व्याख्या प्रमाणित करती है कि विश्वनाथ वर्मा की ही भांति उनकी रानी भी परम विदुषी थीं।

कथा वस्तु का निर्माण निम्नलिखित रूप में कवि ने किया है। राजा भीष्मक अपनी प्राप्त यौवना उपवरा कन्या के वरान्वेषण में चिन्तित थे। राजा भीष्मक ने अपनी मंत्रिपरिषद के समक्ष इच्छा व्यक्त की कि वे रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से करना चाहते हैं। पूरी सभा ने राजा की इच्छा को उचित बताया, किन्तु रुक्मि ने इसका विरोध करते हुए चेदिनरेश शिशुपाल से विवाह करने के लिए अनेक प्रकार के तर्कों के साथ प्रस्ताव

१२७- यह विवरण ग्रन्थ के मुख्य पृष्ट पर ही उल्लिखित है।

रखा। राजा एवं राजमहिषी ने रुक्मि का प्रस्ताव मान लिया।

इस प्रकार वृत्तान्त को शुक सारिकाओं ने रट लिया। रुक्मिणी की सखियों ने उनसे यह वृत्तान्त सुना एवं रुक्मिणी से बताया कि चेदिराज से विवाह के लिए पत्र भी भेजा जा चुका है।

रुक्मिणी अत्यन्त दुखी हुई एवं सखियों से कहा कि किसी विश्वस्त दूत से श्रीकृष्ण को संदेश भेजने के लिए व्यवस्था करो। सखियाँ ब्राह्मण को बुला लाईं, किन्तु रुक्मिणी लज्जावश स्वयं कुछ भी नहीं कह पायीं, अपितु सखियों ने ही उसे संदेश दिया।

इसी बीच एक दिन नारद संयोगवश कुण्डिनपुर पहुँच गये। उनकी अपनी अभियति थी कि श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी के अनुरूप वर हैं, किन्तु रुक्मि के आग्रह से भीष्मक शिशुपाल से रुक्मिणी के विवाह का निश्चय कर चुके थे एवं उसके पास इस आशय का पत्र भी भेज दिया था। अतः रुक्मिणी ने अपनी रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण को पत्र लिखा।

ब्राह्मण दूत वह पत्र लेकर श्रीकृष्ण के पास पहुँचा। वहाँ पहुँच कर ब्राह्मण ने रुक्मिणी का आवाहन संदेश सुनाया एवं पत्र दिया। उन्होंने उद्धव से पढ़ने को कहा। पत्र का संदेश सुनकर श्रीकृष्ण ब्राह्मण के साथ ही कुण्डिनपुर आ गये।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर सकते हैं, इस आंशका से जरासंध शाल्व आदि अनेक योद्धा शिशुपाल की सहायता के लिए आये थे। इधर बलराम भी भावी युद्ध की सम्भावना से श्रीकृष्ण के पास पहुँच गये।

श्रीकृष्ण के कुण्डिनपुर पदार्पण एवं नगर जनों द्वारा उनके दर्शन के लिए लालायित होना कवि ने अत्यन्त कुशलता से चित्रित किया है।

ब्राह्मण दूत ने रुक्मिणी के पास पहुँचकर कृष्ण के आगमन की सुखद सूचना दी। श्रीकृष्ण के आगमन से हर्षित होकर रुक्मिणी वैवाहिक उपक्रमों में जुट गई। जब

वह कुल परम्परानुसार गिरिजापूजन को निकलीं, तब सारे नगर वासी एक स्वर में कहने लगे कि शिशुपाल इसके लिए उपयुक्त वर नहीं है।

दुर्गा मन्दिर पहुँच कर गिरिजापूजन के पश्चात जब रुक्मिणी बाहर आई, तब सभी आगंतुक राजाओं ने उसके अनिन्द्य सौन्दर्य को देखा एवं मूर्च्छित हो गये। उसी समय दासी उसे श्रीकृष्ण के पास ले आयी। श्रीकृष्ण उसका हरण करके निकल गये। जब तक राजाओं को इसका ज्ञान हो पाता, तब तक श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर की सीमा पार कर गये थे। फिर भी राजाओं ने उनका पीछा किया, भयानक युद्ध हुआ एवं पराजित हुए। पराजित शिशुपाल आत्महत्या करने को उद्यत हो गया था, किन्तु सभी राजाओं ने उसे समझा बुझाकर रोका एवं अपने नगर ले गए। तब रुक्मि ने प्रतिज्ञा की कि वह बिना कृष्ण का वध किए कुण्डिनपुर वापस नहीं जाएगा, परन्तु वह भी युद्ध में कृष्ण से पराजित हुआ।

कृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारका पहुँचे। वासुदेव ने भीष्मक को कन्या दान के लिए बुलाया वे अपने चार पुत्रों के साथ आये और कन्यादान किया।

इसके पश्चात् सभी कृष्ण के प्राचीन लीलाओं का स्मरण एवं गान करने लगे। इसी प्रसंग में कवि ने रामावतार आदि अवतारों का विधिवत् वर्णन किया है।

काव्य साहित्य में "रुक्मिणी परिणयम्" शीर्षक से अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध है यथा-- परमानन्द महापात्र विरचित काव्य इसमें ११ सर्ग है। गोविंदरथ, वेंकटशास्त्री, एडवेट्टिकाट्टनबूदरी गोविन्द एवं अप्पय्य दीक्षित जैसे महापण्डितों ने भी इसी नाम से काव्यों का सृजन किया है। प्रत्येक ने अपनी काव्य चातुरी एवं कल्पना प्रवणता का परिचय दिया है।

रुक्मिणी हरणम् ---

पं० काशीराम शर्मा के "सुधीसुधानिधि" के अतिरिक्त भी रुक्मिणी हरण

शीर्षक से काव्य लिखे गये थे। जिनमें प्रमुख है। हेमचन्द्र राय कविभूषण एम० ए० विरचित रुक्मिणी हरण उल्लेखनीय है।

यह ग्रन्थ भी कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था एवं इसके प्रकाशक स्वयं हेमचन्द्र राय ही थे। इसकी प्रकाशन स्थली थी "हेमकुटी"। कवि ने इसके प्रकाशन का वर्ष १२१६ बँग संवत्सर दिया है। तदनुसार इसका प्रकाशन १६१० ई० को सिद्धेश्वर मुद्रणालय से हुआ था। इस ग्रन्थ की भूमिका लेखक श्रीमती फणिभूषण तर्क वागीश ने १२ फाल्गुन १३१६ बँग सन् में लिखी थी। ये पावनादर्श विद्यालय के प्राध्यापक एवं हेमचन्द्र राय के मित्र थे। इस काव्य के कथावितान की विशेषतायें कुछ इस प्रकार समझी जा सकती है।

कर्णाकर्णिकया एक दूसरे के रूपशील गुणशौर्य के विषय में सुनकर रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण एक दूसरे पर अनुरक्त थे। रुक्मिणी स्वप्न में श्रीकृष्ण को पति रूप में देखा करती थी। एक दिन कृष्ण ने अपने गुप्तचर से अपने शासन-अनुशासन के विषय में लोक मान्यता के विषय में प्रश्न किया। गुप्तचर ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि ऐसा प्रचार है कि आप जरासंध के भय के कारण समुद्र के बीच में राजधानी बनाकर निवास कर रहे हैं। इस समाचार से कृष्ण के मन में अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्होंने बलराम से वार्ता की। बलराम को अत्यन्त क्रोध आया एवं उन्होंने जरासंध के मान मर्दन करने की सलाह दी।

उसी समय सात्यकि ने सलाह दी कि सर्वप्रथम उसके मित्र राजाओं को पराभूत करना चाहिए तभी जरासंध का वास्तविक पराभव सम्भव हो पायगा।

नारद एक बार द्वारका पहुँचे एवं उन्होंने श्रीकृष्ण से रुक्मिणी की प्रशंसा की तथा कहा कि वे ही उसके अनुरूप वर हैं। लेकिन भीष्मक उसका विवाह आपसे नहीं करना अतः आप स्वयं ही उनसे रुक्मिणी को माँग लीजिए। श्रीकृष्ण ने कहा कि जब

मेरी बुआ का पुत्र शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह का इच्छुक है तब मैं कैसे उसका पाणिग्रहण करेंगे। रुक्मिणी आपकी पट्टमहिषी बनेगी।

कुण्डिनपुर की यह स्थिति थी कि भीष्मक श्रीकृष्ण से रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे, किन्तु रुक्मि इसका विरोध करता था वह कहता था कि शिशुपाल ही इसका उचित वर है।

जरासंध ने भीष्मक से रुक्मिणी को शिशुपाल के लिए मांगा। भीष्मक उसके प्रस्ताव को टाल न सके एवं स्वीकार कर लिया। रुक्मि तो पिता के निर्णय से अत्यन्त प्रसन्न हो गया परन्तु रुक्मिणी को यह समाचार मिला तो वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी। उसने कहा कि मैं कृष्ण को ही अपना पति मान चुकी हूँ किसी अन्य से तो विवाह की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सखियों ने उसे सान्त्वना दी।

रुक्मिणी ने पुरोहित को बुलाया एवं उसे पत्र देकर श्रीकृष्ण के पास भेजा। उसने श्रीकृष्ण को पत्र दिया। श्रीकृष्ण परिस्थितियों से अवगत हुए एवं सात्यकि सूचित करके अपने सारथि दारुक को लेकर ब्राह्मण दूत को भी रथ पर बैठाकर कुण्डिनपुर पहुँच गये। भीष्मक ने उनका स्वागत किया। नगरजनों ने श्रीकृष्ण की छवि पर मुग्ध होकर कहा कि यही रुक्मिणी के अनुकूल वर हैं। शिशुपाल को आंशका हुई कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेंगे। अतः वह रुक्मि के पास गया। रुक्मि ने उसे सान्त्वना दी। जरासंध ने कहा कि आश्वस्त होना उचित नहीं है, क्योंकि कृष्ण के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। ऐसी स्थिति में हम सभी युद्ध करेंगे।

उधर रूक्मिणी को अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे थे। ब्राह्मण दूत ने आकर वताया कि कृष्ण कुण्डिनपुर पधार चुके है। प्रसन्न होकर रुक्मिणी गिरिजापूजन के लिए निकल पड़ी। पूजन के बाद अम्बिका मंदिर के बाहर आते ही श्रीकृष्ण उसको हरण कर ले गये। नारद भी उस दृश्य को देखने के लिए वहाँ प्रकट हो गये। जरासंध

आदि राजाओं ने श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर दिया। भयंकर संग्राम हुआ एवं सभी पराजित हुए। रुक्मि कृष्ण का पीछा करता रहा एवं नगर की सीमा के बाहर श्रीकृष्ण से रुक्मि एवं उसकी सेना के साथ घोर युद्ध हुआ। रुक्मि को पराजित कर श्रीकृष्ण ने उसे बाँध लिया। रुक्मिणी भ्रातृप्रेम वश कृष्ण से प्रार्थना करने लगी कि वे उसका वध न करें। हारे हुए सभी राजा शिशुपाल के पास जाकर उसे सांत्वना देने लगे। रुक्मि पराजय की लज्जा के कारण कुण्डिनपुर वापस नहीं आया।

द्वारका जाते हुए मार्ग में ही नारद पुनः कृष्ण से मिले एवं अपनी भविष्यवाणी की याद दिलाई तथा आशीर्वाद दिया। द्वारका पहुँच कर सारा वृतान्त वसुदेव को भी बताया। वसुदेव अत्यन्त प्रसन्न एवं गौरवान्वित हुए। विवाहोत्सव हुआ। श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के संयोग से अनंग का जन्म हुआ।

२. रुक्मिणी कल्याण महाकाव्य :-

इस महाकाव्य की रचना राजचूड़ामणि दीक्षित ने की थी। इस पर श्री भाल यज्ञवेदेश्वर की मौक्तिमलिका नाम्नी संस्कृत टीका भी उपलब्ध है। इस व्याख्या के साथ ग्रन्थ मद्रास की अडियार पुस्तकालय में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ की प्रति १९२९ ई० में प्राप्त हुई थी। इसका सम्यक् सम्पादन आडयार पुस्तकालय के विद्वानों ने किया है।

ग्रन्थ के पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कवि के पिता रत्नरवे श्री निवास दीक्षित एवं माता कामाक्षी थीं।

इस ग्रन्थ का रचयिता अत्यन्त प्रभावशाली था। उसने अपने जीवन में दो ग्रन्थों की रचना की थी। मात्र सात वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने कमलिनी कलहंस नाटिका की रचना की थी। कवि तन्त्र शिखामणि नामक ग्रन्थ १६३६ ई० में लिखा था। यह काल तन्त्र शिखामणि की पुष्पिका से ही ज्ञात होता है।

अतः ऐसा माना जा सकता है कि कवि स्थिति सोलहवीं शती का उत्तरार्ध एवं सत्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध था। इस महाकाव्य के दो सर्गों का प्रकाशन सी० कुन्हनराज ने किया है। उनकी भूमिका से ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य में १० सर्ग है।

इस काव्य की कथावस्तु का समारंभ ५४ वें श्लोक से द्वारिका वर्णन से होता है। ३० श्लोकों में कवि ने द्वारकापुरी का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। कथा अधोलिखित रूप में प्रस्तुत की गई है।

एक दिन श्रीकृष्ण अपने उपवन में गये वहाँ विविध प्रकार के मनोरम दृश्यों को देखकर रुक्मिणी को हृदय से ही स्मरण करने लगे। रुक्मिणी के हृदय में निवास करते हुए श्रीकृष्ण के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करना कवि की अनूठी कल्पना शक्ति का परिचायक है। रुक्मिणी के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में भी कवि की कविकर्म चतुराई का परिचय मिलता है। इसी प्रकार कृष्ण के विरहवर्णन के सजीवता भी अनूठी है। प्रकाशित अंश में मात्र इतनी ही कथा वर्णित है। अतः महाकाव्य में सम्पूर्ण कथा प्रबन्धन को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

इसी नाम से अन्य महाकाव्य विद्या चक्रवर्त्ती ने लिखा था। इस काव्य में १६ सर्ग है।

इसके अतिरिक्त रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण के विवाह से सम्बन्धित काव्यों की लम्बी श्रृंखला है। जिसका विवरण प्रथम अध्याय में दिया जा चुका है। प्रकरण में कुछ ग्रन्थों का संकेत मात्र प्रस्तुत है।

१- रुक्मिणी कृष्ण विवाह -- रचयिता -- तञ्जावुर नरेश रघुनाथ

२- रुक्मिणी बल्लभ परिणयम् -- रचयिता -- नृसिंह तात

३- रुक्मिणी परिग्रहणम् -- रचयिता -- गोविन्द वाणी

४- रुक्मिणी स्वयंवर प्रबन्ध -- रचयिता -- एड्डाबड्ढ़ि कोड्माण नम्बूदरी पाद

इसी प्रकार चम्पू साहित्य में कुछ विशिष्ट नाम------

गोवर्धन कृत रूक्मिणी चम्पू, अम्मालु वेंकटाचार्य कृत रुक्मिणी चम्पू, रामराय कृत रुक्मिणी परिणय चम्पू, आदि।

एक अन्य महाकाव्य अभी १६६२ में प्रकाशित हुआ है। यह महाकाव्य रुक्मिणी कृष्ण विवाह से सम्बन्धित ज्ञात साहित्य में सर्वथा नवीन स्थान रखता है। अतः इस महाकाव्य का विवरण देते हुए अध्याय की परिसमाप्ति उचित प्रतीत हो रही है।

इस ग्रन्थ के रचयिता बालमुकुन्द भट्ट थे। ग्रन्थ की मातृका इलाहाबाद संग्रहालय से प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थ की कोई भी अन्य मातृका अब तक नहीं प्राप्त हो सकी है। मात्र एक हस्तलेख के आधार पर राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली के डिप्टीकीपर डा० सत्यव्रत त्रिपाठी ने सम्पादित किया। १६६२ में इस ग्रन्थ का प्रकाशन इलाहाबाद के गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ से हुआ है।

यह ग्रन्थ सर्वथा लुप्तप्रायः होने के कारण अपना महत्व रखता है। इस महाकाव्य में १३ सर्ग है। भाषा सामान्य एवं कहीं-कहीं व्याकरण के नियमों के विरूद्ध है। ग्रन्थ में इस कथा का विस्तार अधोलिखित प्रकार से किया गया है।

कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक को ५ पुत्र एवं एक कन्या थी। रुक्मिणी नाम्नी वह कन्या अत्यन्त सुन्दरी थी। एक दिन राजा के प्रासाद में नारद आये। कन्या ने उन्हें प्रणाम किया, नारद ने आशीर्वाद दिया कि श्रीकृष्ण ही तेरे पति हों। उन्होंने विस्तार से श्रीकृष्ण के गुणों का बखान किया। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को हृदय से अपना पति मान लिया।

कुण्डिनपुर से नारद फिर द्वारका पहुँचे स्वागत के पश्चात उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा कि भीष्मराज कन्या का जन्म आपके लिये ही हुआ है। कृपया आप उससे विवाह कर लें। नारद से उसके रूप गुणों की प्रसंशा सुनकर श्रीकृष्ण ने स्वीकृति दी एवं मन

से रुक्मिणी को पत्नी स्वीकार कर लिया।

रुक्मिणी कृष्ण के चिन्तन में ही खोई रहने लगी। उपवरा कन्या को देखकर राजा ने पुरोहित मंत्रियों एवं पत्नी से परामर्श किया। पत्नी ने राजा को नारद की बात याद दिलाई। सभी इस प्रस्ताव से प्रसन्न हो गये एवं भीष्मक ने वैसाख शुक्ल अष्टमी विवाह के लिए निश्चित किया। रुक्मि यह समाचार पाकर क्रुद्ध हो गया तथा कृष्ण की निन्दा करने लगा। उसने शिशुपाल को रुक्मिणी का योग्य वर बताया। क्रोध में पिता की उपेक्षा करके रुक्मी ने यह घोषणा कर दी कि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से ही होगा। उसने शिशुपाल को स्वयं ही पत्र लिख दिया।

रुक्मिणी भाई के इस कृत्य से अत्यन्त दुखी हुई एवं श्रीकृष्ण की चिन्ता में सो गयी। स्वप्न में उसे गर्ग आदि मुनिंयो ने बताया कि गिरिजापूजन के समय श्रीकृष्ण तुम्हारा हरण करेंगे।

इसके पश्चात भी रुक्मिणी व्याकुल थी। उसने एक ब्राह्मण को पत्र देकर द्वारका भेजा। ब्राह्मण ने कृष्ण के पास जाकर पत्र दिया। [१२८]

श्रीकृष्ण ने पत्र पढ़कर ब्राह्मण को आश्वासन दिया एवं दारुक को बुलाकर ब्राह्मण के साथ कुण्डिनपुर प्रस्थान कर गये।

कुण्डिनपुर में विवाह की तैयारियाँ हो रहीं थी। रुक्मिणी से स्नान के लिए कहा गया, उसने कहा कि वह ज्वर से पीड़ित है, किन्तु रुक्मि ने हठपूर्वक बिना स्नान कराये ही अन्य वैवाहिक कृत्य कराना आरम्भ कर दिया।

तभी ब्राह्मण ने आकर सूचना दी कि कृष्ण गिरजालय से तुम्हारा हरण

१२८- इस महाकाव्य का षष्ठ सर्ग पूर्ण रूप से रुक्मिणी के पत्र को समर्पित किया गया है।

करेंगे।

उधर दमघोष्ण तक रुक्मी का पत्र पहुँचा। सभी प्रसन्न हुए एवं विवाह की तैयारियां करके कुण्डिनपुर को प्रस्थान किया। कृष्ण से विवाह के भीष्मक के निर्णय को सभी जानते थे। अतः कृष्ण के भय से सारी सेना के साथ आये थे।

रुक्मिणी शिशुपाल का आगमन सुनकर बेहोश हो गयी। स्वप्नावस्था में पुनः उसे ज्ञान हुआ कि कृष्ण गिरिजालय से उसका हरण करेगें।

शिशुपाल की सहायता के लिए जरासंध शाल्व आदि नरेश भी अपनी सेनायें लेकर आये थे। कि जब रुक्मिणी का हरण करेगें तब सभी मिलकर उनसे युद्ध करेगें।

द्वारका में दूसरे दिन सुबह यदुओं को कृष्ण नहीं मिले। सभी ने कञ्चुकी से पूँछा उसने बताया कि वे एक ब्राह्मण के साथ चले गये है। सभी दुखी होकर बलराम के पास पहुँचे। बलराम ने उनके विदर्भ जाने की सूचना दी। यद्यपि वे पूर्व सूचित नहीं थे, किन्तु रुक्मिणी कृष्ण के प्रेम के विषय में उनको ज्ञात था। इसी आधार पर वह बोले थे। रुक्मिणी हरण के समय सम्भावित युद्ध को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सभी महारथियों को बुलाया एवं सेना के साथ कुण्डिनपुर गये।

रुक्मिणी विवाह काल आ जाने पर भी श्रीकृष्ण को न देखकर अत्यन्त दुखी थी। उसी अवसर पर श्रीकृष्ण का संदेश लेकर ब्राह्मण पहुँचा। उसने रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के कुण्डिनपुर प्रवेश का समाचार दिया। ब्राह्मण को दान देकर रुक्मिणी प्रेम विह्वला होकर सौध पर चढ़कर कृष्ण को देंखने लगी। दूर से राजपथ पर कृष्ण का रथ दिखाई दिया। रुक्मिणी की माता भी अत्यन्त प्रसन्न हुई एवं रुक्मिणी के भाग्य की सराहना करने लगी।

श्रीकृष्णागमन की वार्ता से सभी राजा चिन्तित होकर रुक्मि के पास गये। रुक्मि ने बताया कि बलराम और श्रीकृष्ण मेरी बहन का विवाहोत्सव देखने आये होंगे।

राजा भीष्मक ने स्वयं उन दोनों भाइयों का स्वागत एवं अभ्यर्चना की। कृष्ण का आगमन सुनकर सभी पुरवासी भी उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़े। गिरिजापूजन को जाने से पूर्व रुक्मि ने सेनापति को समझाया कि कृष्ण रुक्मिणी को किसी भी प्रकार देख न सकें ऐसा प्रबन्ध करना। गिरिजापूजन के अवसर पर कृष्ण पहले से ही उपवन में पहुँच चुके थे। रथ पर वह रुक्मिणी की ही प्रतीक्षा कर रहे थे।

पूजन के समय गौरी ने स्वयं ही कृष्ण के साथ जाने का मार्ग बताया एवं आशीर्वाद दिया। मन्दिर से बाहर निकलने पर रुक्मिणी का अद्भुत रूप देखकर सभी राजा मूर्च्छित एवं स्तब्ध हो गये। सखियों ने उसे कृष्ण के रथ की ओर संकेत किया। रुक्मिणी ने कहा कि वे मुझे हरने आये हैं, तो स्वयं ही ले जायेंगे। इसी बीच कृष्ण ने रुक्मिणी का कर पल्लव हाथ में लेकर रथ पर बिठाया एवं निकल पड़े।

रुक्मिणी हरण की वार्ता विद्युत गति से फैल गई । सभी राजा बलराम-श्रीकृष्ण से पराजित हो चुके थे।

रुक्मि भीष्म के मना करने पर भी कृष्ण की हत्या किये बिना न लौटने की प्रतिज्ञा करके गया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। रुक्मि के घायल होकर भूमि पर गिरने के पश्चात् रुक्मिणी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण द्वारका आये एवं विधिवत् विवाह किया। इस अवसर पर नारदादि ऋषिगण भी उपस्थित थे।

संस्कृत के रूपक साहित्य में रुक्मिणी हरण कथा-

१- रुक्मिणी हरणम् (नाटक) - कवि बालकृष्णभट्ट ने इस नाटक का प्रणयन ५ अंकों में किया है।

कवि पिता अनन्तभट्ट एवं पितामह श्री मन्माधव थे। कवि ने प्रत्येक अंक के अन्त इस प्रकार की पुष्पिका लिखी है।

"श्री मन्माधव सुतानन्दभट्ट सुतबालकृष्णभट्ट कृते रुक्मिणी हरणे नाटक ---अंक"।

इस नाटक का कथा प्रतान इस प्रकार है।---

रुक्मि का भेजा हुआ कञ्चुकी विवाह की सामग्री के साथ शिशुपाल के महल प्रवेश करता है। उसे रुक्मिणी से विवाह करने के लिए प्रस्ताव देने एवं शिशुपाल की स्वीकृति लेने के लिए भेजा गया था। बसन्तक एवं चन्द्रिका नामक दो सेवकों ने कञ्चुकी से इस विवाह के विषय में भीष्मक के चित्त की बात जाननी चाही। कञ्चुकी ने उन्हें बताया कि राजा भीष्मक ने रुक्मिणी का विवाह कृष्ण के साथ करना निश्चित किया था किन्तु रुक्मि ने उसे नहीं माना और चेदिराज से विवाह निश्चित किया। यह सुनकर रुक्मिणी अत्यन्त दुखी हो गयी। उसने कहा कि सिंह स्वरूप श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रशंसा की। उन दोनों को अपने स्वामी की निन्दा एवं श्रीकृष्ण की प्रशंसा सुनकर अत्यन्त क्रोध आ गया। वे आपस में कलह करने लगे। उसके बाद राजा शिशुपाल को रुक्मी के आग्रह एवं प्रस्ताव की सूचना देने जाते है। कञ्चुकी शिशुपाल के निकट जाकर प्रणाम करता है।

द्वितीय अंक में काम पीड़ित रुक्मिणी दिखाई देती है। प्राण त्यागने को उद्यत थी एवं बार-बार मूर्च्छित हो जाती थी।

तृतीय अंक में रुक्मिणी एक ब्राह्मण को बुलाकर पत्र देती है। कृष्ण के पास द्वारका जाने का निर्देश देती है। उसके पश्चात कृष्ण आयेगें या नहीं यह सोच-सोच कर अत्यन्त चिन्तित होती है। उसकी सखी सांत्वना देती हुई कहती है कि विवाह में यादवगण अवश्य आयेंगे। वह विवाह के लिए सुसज्जित कुण्डिनपुर नगर की शोभा का वर्णन

करती हैं।

चतुर्थ अंक में शिशुपाल आदि के कुण्डिनपुर पहुँचने का समाचार पाकर रुक्मिणी दुःखार्ता हो जाती है। उसी समय संदेशहारी ब्राह्मण पहुँच जाता है तथा रुक्मिणी को सान्त्वना देता है।

द्वितीय दृश्य में ब्राहमण से रुक्मिणी का पत्र पाकर कृष्ण उसके हरण का निश्चय करते दिखाई देते है।

गिरिजापूजन की तैयारी करते समय रुक्मिणी के लिए शुभ शकुन होने लगते है। उसी समय उसका संदेशवाहक ब्राह्मण पहुँच कर उसे श्रीकृष्ण के आगमन की सूचना देते है। वह श्रीकृष्ण के लिए निर्देश भेजती है कि गिरिजापूजन करके मन्दिर से बाहर आने पर श्रीकृष्ण उसका हरण कर लें।

श्रीकृष्ण को आया हुआ देखकर सभी पुरवासी मन में विचार करते हैं कि क्या यह सुन्दर वर रुक्मिणी को ब्याहेगा? श्रीकृष्ण के आगमन को सुनकर भीष्मक भी उनके स्वागत के लिए जाते है।

अपने आस पास सशस्त्र अंगरक्षकों को देखकर रुक्मिणी दुखी होती है। तब साथ चल रही सखी उसे समझाती है कि श्रीकृष्ण इन रक्षकों के लिए अकेले ही पर्याप्त है। तत्पश्चात् रुक्मिणी गिरिजापूजन के लिए जाती है, तथा गिरिजा से प्रार्थना करतीं हैं कि कृष्ण उनका हरण कर लें।

तभी श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के साथ चल रहे ब्राह्मण को आदेश दिया कि वह रुक्मिणी को उनके रथ पर बैठा दें। ब्राह्मण ने उन्हें रुक्मिणी का पाणिग्रहण करने को कहा।

नैपथ्य में कल कल की ध्वनि सुनाई देती है कि कृष्ण ने भैष्मी का अपहरण कर लिया।

रुक्मि एवं अन्य राजा रुक्मिणी से कहते है "हे भैष्मि मा भैषीः"। "हे भीष्मपुत्री तुम भयभीत मत होओ"।

२- रुक्मिणी परिणयम् (नाटक) - इस नाटक के रचनाकार रामवर्मा थे, एवं काशीनाथ शर्मा ने इसका सम्पादन किया था। इसका प्रकाशन १८९० ई० में निर्णयसागर प्रेस बम्बई से हुआ था।

यह कवि त्रावणकोर राज्य का युवराज था एवं इसका काल १७५७-१७८६ ई० बताया गया है। इस नाटक में कृष्ण की संज्ञा वासुदेव है। कथासार इस प्रकार है।

प्रथम अंक :- उद्धव कृष्ण को पत्र दे देते हैं कि विदर्भ के लोग यादवों के प्रति आस्थावान है किन्तु शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करना चाहता है एवं रुक्मि की शिशुपाल से मैत्री है। अतः आप शीघ्र ही कुण्डिनपुर के लिए प्रस्थान करें। कृष्ण अपने सारथी दारुक को साथ लेते है तथा विदर्भ पहुँच कर दुर्गा मन्दिर में विश्राम करते है।

उद्धव विदर्भ के वासी दिखाये गये है। उन्होंने दासी से रुक्मिणी का कृष्ण के प्रति प्रेमभाव सुन चुके थे। भीष्मक की आज्ञा से उन्होंने ही शिशुपाल को पत्र भेजा था। रुक्मिणी की दासी ने शिशुपाल से विवाह निश्चित किये जाने के कारण रुक्मिणी के दुख को उद्धव को बताया। तब उद्धव ने दासी को सूचना दी कि मैंने रुक्मिणी का दुख दूर करने के लिए कृष्ण को कुण्डिनपुर बुलाया है वे दुर्गा मन्दिर में विराजमान है।

द्वितीय अंकः- श्रीकृष्ण रात्रि में स्वप्न में रुक्मिणी का दर्शन करते है। प्रातः रुक्मिणी एवं उसकी सखी कृष्ण से मिलने गये। कृष्ण उसे लता कुञ्ज की ओट से देखते है। दुर्गापूजन काल में किसी मायावी ने उसका अपहरण कर लिया। यह सुनकर कृष्ण

उसके पीछे जाते है एवं रुक्मिणी को पकड़ने के बहाने उसका आलिंगन कर लेते है। इसके पश्चात् दासी एवं रुक्मिणी वापस चले जाते है।

तृतीय अंक- रुक्मिणी कृष्ण के आलिंगन के कारण काममोहिता हो गयी थी। उसकी सखियाँ बारम्बार उसकी मूर्च्छा दूर कर रहीं थी। उसने चित्र फलक में कृष्ण का चित्र बनाया। उस चित्र को देख कर पुनः बोली "या कृष्ण के साथ समागम कराओ अथवा दूर हो जाओ।" रुक्मिणी भाई एवं पिता की निर्दयता की निन्दा करती है।

चतुर्थ अंकः- शिशुपाल रुक्मि द्वारा भेजा हुआ पत्र पढ़ता है। "जब से भैष्मी का विवाह तुमसे निश्चित हुआ है, तब से वह नहीं सोती।" यह पढ़कर शिशुपाल कामाभिभूत हो जाता है। द्वितीय दृश्य में रक्षकों से परिकृता रुक्मिणी पूजनार्थ मन्दिर में प्रवेश करती है। वह कहती है। कि "अब मैं प्राण त्याग दूंगी" किन्तु सखियां उसे समझाती है।

तत्पश्चात् मन्दिर में कृष्ण को देखकर उठती है। सखी उसका हाथ कृष्ण को देकर चली जाती है। लज्जिता रुक्मिणी हाथ छोड़ने के लिए कहती है, किन्तु कृष्ण ने कहा कि सखियां गई अब हम भी अपने नगर चलें।

पंचम अंकः- पंचम अंक में शिशुपाल का कुशलक्षेम ज्ञात करने गया हुआ सिंहकेतु लौटकर भीष्म के अमात्य को सूचित करता है कि सबके समक्ष रुक्मिणी ने कृष्ण से कहा कि आपके वियोग में मेरी क्या गति होगी ? अनन्तर कृष्ण ने उसका हरण कर लिया। युद्ध हुआ। सभी विपक्षियों को पराजित करके कृष्ण रथ लेकर चले गये।

यह सुनकर अमात्य राजा को सूचित करने के लिए चला जाता है। कृष्ण

परिहास करते हुए द्वारिका पुरी पहुँच जाते है।

३- रुक्मिणी परिणयम्:- यह नाटक संस्कृत भाषा किन्तु मैथिली लिपि में लिखा गया था। इसके लेखक रमापति उपाध्याय थे। इस ग्रन्थ के सम्पादक डा० जयकान्त मिश्र [१२६] के विवेचन से ज्ञात होता है कि इस नाटक की रचना मिथिला नरेश नरेन्द्र सिंह (सन् १७४४-१७६१ ई०) के राज्य काल में हुई थी।

नाटक की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि कवि के पिता कृष्णपति उपाध्याय थे।

नाटक के आरम्भ में रुक्मिणी का भाई रुक्मि कृष्ण के प्रति क्रोध प्रकट करता हुआ प्रवेश करता है। साथ में उसके पिता भीष्मक प्रवेश करते है। वे रुक्मि के विरोध करने पर भी कृष्ण को निमन्त्रण भेजने पर कटिबद्ध है। उनकी रानी उन्हें आश्वस्त करती है।

द्वितीय अंक में रुक्मिणी शिशुपाल से विवाह करें। इस प्रकार का निर्णय रुक्मि सुनाता है। राजा द्वारा उसकी योग्यता पूछे जाने पर वह शिशुपाल के दूत कलहवर्धन को बुलाता है और कहता है कि यह उसकी योग्यताओं को बतायेगा।

राजा ने प्रश्न किया कौन-कौन आत्मीय जन हैं? वह शिशुपाल दन्तवक्त्र जरासंध आदि का वर्णन करता है। यादवों को दुष्ट बताता है। उसके कथन से रुक्मी प्रसन्न हो जाता हैं तथा राजा भी संतुष्ट हो जाते हैं।

राजा हरिवल्लभ नामक दूत को बुलाकर पूँछते है, उसने श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए उन्हें रुक्मिणी को योग्यतम् वर के रूप में प्रदर्शित किया। राजा कहते हैं कि

१२६- इसका प्रकाशन "अखिल भारतीय मैथिली साहित्य समिति" इलाहाबाद से १९६१ ई० में हुआ था।

मेरा पुत्र अज्ञानतावश कृष्ण का विरोधी है। हरिवल्लभ रुक्मि को प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। रुक्मी परिवल्लभ एवं कलहवर्धन से परामर्श करके हरिवल्लभ को भगा देता है।

हरिवल्लभ राजा के पास जाकर कृष्ण के लिए प्रयत्न करने का आग्रह करता है एवं इसके लिए स्वयंवर की समीचीनता सिद्ध करता है। यह सुनकर रुक्मि क्रुद्ध हो जाता है किन्तु बाद में सभी राजाओं को निमन्त्रित करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है। निमन्त्रण देने के लिए राजा ने ब्राह्मण को विशेष रूप से आदेश दिया।

तृतीय अंक- ब्राह्मण कृष्ण के पास पहुँच कर सब समाचार सुनाता है। कृष्ण रुक्मि के द्वारा संभावित अपमान को ध्यान में रखकर स्वयंवर में जाने के लिए अनिच्छा प्रदर्शित करते है, किन्तु ब्राह्मण रुक्मिणी को दर्शन देने के लिए विशेष रूप से प्रार्थना करता है। अन्य दृश्य में रुक्मिणी की सखियां कृष्ण के आगमन के विषय में परस्पर वार्ता करतीं है। उसी समय वहाँ गरूड़ासीन श्रीकृष्ण पधारे। उन्हें आकाश मार्ग में ही सखियों ने देखा।

चतुर्थ अंकः- क्रथकैशिक सभी यादवों का स्वागत करके अपने राजा के रूप में कृष्ण का अभिषेक करता है। तभी भीष्मक उपस्थित होते हैं एवं अपने पुत्र की धृष्टता के लिए क्षमा याचना करते है। कृष्ण बिना स्वयंवर के ही रुक्मिणी से ही विवाह की इच्छा प्रकट करते है। भीष्मक उसे स्वीकार भी करते हैं। उसी समय गरूड़ को बुलाकर कृष्ण स्वयंवर के न होने पर क्रुद्ध जरासंधादि दुष्टों के आक्रमण से सुरक्षित द्वारकापुरी के निर्माण के लिए आदेश देते है। गरुड़ चले जाते हैं। भीष्मक सभा में घोषणा कर देते है कि स्वयंवर नहीं होगा एवं सभी राजाओं से प्रार्थना करते है कि वे जाएँ।

पंचम अंकः- मथुरा जाकर नारद से कृष्ण ने भीष्मक को सूचित किया कि विवाहोत्सव होगा। भीष्मक विवाह की तैयारी करने का आदेश देते है। रुक्मि प्रसन्न होकर कलहवर्धन से शिशुपाल को आमन्त्रित करने के लिए भेजता है। यह सुनकर रानी दुखी हो जाती है एवं रुक्मिणी मूर्च्छित हो जाती है।

नारद आकर रुक्मिणी को सान्त्वना देते है एवं बलराम तथा कृष्ण बुलाने के लिए प्रस्थान करते है।

षष्ठम् अंकः- कलहवर्धन शिशुपाल को बुला लाता है। रुक्मि प्रसन्न होता है एवं रुक्मिणी दुखी होती है।

नारद एवं कञ्चुकी श्री कृष्ण के आगमन की सूचना देते हैं।

गिरिजा के पूजन के लिए गई रुक्मिणी को कृष्ण हर ले जाते है। शिशुपाल के साथ सभी राजा उनका पीछा करते है।

रुक्मि कृष्ण को मारकर ही लौटने की प्रतिज्ञा करके प्रस्थान करता है। महासंग्राम होता है। कृष्ण युद्ध करते हुए द्वारका पहुँच जाते है।

बाद में बलराम आदि भी विपक्षियों को हराकर द्वारका जाते है। विवाहोत्सव होता है। बलराम के अनुरोध से उग्रसेन वसुदेव-देवकी भी वहाँ पहुँचते है।

नारद एवं बलराम शीघ्र विवाह का आदेश देते है। रुक्मि कृष्ण से पराजित एवं कुरुपित होकर कुण्डिनपुर नहीं लौटता। वहीं भोजकट नगर का निर्माण करता है।

इसी नाम से विश्वेश्वर, आत्रेयवरद, एवं तार्किक सिंह कृत अनेक रूपक अन्य भी हैं। जिनकी चर्चा प्रथम अध्याय में हो चुकी है।

अन्य रूपक जैसे---

वत्सराज का ईहाभृग, "रुक्मिणी परिणय" वेंकटपति का "रुक्मिणी स्वयंवर"

नामक अंक, सरस्वतीनिवासकृत, "रुक्मिणी परिणय" नाटक भी उल्लिखित हो चुके थे।

४- कृष्ण रुक्मिणीयम् (नाटक):- इस नाटक के रचयिता वि० पा० वोकील महोदय थे। ये पूना में शिक्षाशास्त्र के प्राध्यापक थे। बाद में शिक्षा निदेशक रहे। इस नाटक का प्रकाशन नवम्बर १९६५ ई० में श्री मुद्रण मन्दिर ५०८, सदाशिवपीठ, पूना से हुआ था।

रुक्मिणी एवं कृष्ण के विवाह से सम्बद्ध यह आधुनिकतम् नाटक कहा जा सकता है।

कवि स्वयं इस नाटक के प्राक्कथन में लिखता है कि यह नाटक २५ अक्टूबर १९६५ ई० को पूर्ण हुआ था।

कवि लिखता है कि यद्यपि हरिवंश भागवतादि पुराणों में वर्णित रुक्मिणी कृष्ण विवाह से सम्बद्ध अनेक नाटक लिखे गये हैं किन्तु प्रस्तुत नाटक को अन्य सभी से विलक्षण एवं रुचिकर बनाने के लिए अनेकानेक घटनाओं एवं कल्पनाओं का समावेश किया गया है। उदाहरणार्थ--

१- सुकीर्ति ब्राह्मण (संदेशवाहक) का कारावास

२- हलधर द्वारा कुण्डिनपुर पर आक्रमण आदि

इस प्रकार कवि ने स्वयं ही नाटक का वैशिष्ट्य बताया है। इसके अन्य तत्वों को इस प्रकार देखा जा सकता है।

श्रीकृष्ण का संदेश वाहक सुकृत नामक ब्राह्मण कुण्डिनपुर जाकर भीष्मक को श्रीकृष्ण का विवाह विषयक संदेश देता है। उसने भीष्मक को अनेक प्रकार से समझाया

कि कृष्ण ही रुक्मिणी के सर्वथा योग्य वर है किन्तु रुक्मि ने क्रुद्ध होकर कृष्ण की निन्दा करके उस दूत को बन्दी बना लिया।

श्रीकृष्ण समाचार पाकर उसे बन्धन मुक्त कराने कुण्डिनपुर जाने को उद्यत हुए किन्तु बलराम उन्हें रोककर स्वयं कुण्डिनपुर पर आक्रमण करते है एवं सुकीर्ति को मुक्त कर ले जाते है।

इस अभियान में बलराम की पत्नी रेवती भी साथ होती है एवं उसका परिचय रुक्मिणी से होता है।

रुक्मि रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है किन्तु भीष्मक कहते है कि शिशुपाल एवं कृष्ण में युद्ध हो तथा विजेता ही रुक्मिणी का पाणिग्रहण करेगा।

तत्पश्चात शिशुपाल द्वारका पर आक्रमण करता है तथा कृष्ण द्वारा पराजित होता है। बलराम ने असस आक्रमण का कारण पूछा तब शिशुपाल ने रुक्मि को इसका उत्तरदायी बताया।

दूसरी ओर शिशुपाल की पराजय का समाचार सुनकर भीष्मक ने कृष्ण से रुक्मिणी के विवाह का निर्णय किया किन्तु रुक्मि ने पुनः विरोध किया एवं बलपूर्वक शिशुपाल को रुक्मिणी देने की बात कही। रुक्मिणी को कृष्ण पर विश्वास था। अतः उसने बात टालने की दृष्टि से रुक्मि की बात मान ली।

भीष्म श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारका जाते है। वापस आने पर रुक्मिणी के विवाह की तैयारी देखकर प्रसन्न होते हैं, किन्तु कृष्ण को निमन्त्रण पत्र न भेजा जाना अनर्थकारी बताते है।

रुक्मिणी स्वयं पत्र देकर एक ब्राह्मण को कृष्ण के पास भेजती हैं तथा उन्हें बुलाती है।

कृष्ण सारी परिस्थितियाँ समझाते हुए कुण्डिनपुर जाते हैं तथा गिरिजापूजा के

अवसर पर रुक्मिणी का अपहरण करते है।

दोनों पक्षों में घोर युद्ध होता है जिसमें भी कृष्ण विजयी होते हैं।

इस प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों द्वारा रचित दृश्य एवं श्रव्य काव्यों में रुक्मिणी-कृष्ण विवाह के पौराणिक प्रसंग में विविध प्रकार की कवि कल्पनाओं का चारु समावेश दृष्टिगोचर होता है।

१- श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी का पुर्वानुराग।

२- रुक्मि का श्रीकृष्ण के प्रति द्वेष।

३- रुक्मिणी का स्वयंवर न होना।

४- रुक्मिणी का देवालय में पूजन करने के लिए जाना।

५- श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण।

६- राजाओं के सम्मिलित मोर्चे से कृष्ण एवं बलराम का युद्ध।

७- श्रीकृष्ण एवं बलराम की विजय।

८- हारे हुए रुक्मि का कुण्डिनपुर वापस न आना।

समीक्षाः-

विभिन्न कवियों एवं नाटककारों ने उक्त तथ्यों में बिना परिवर्तन किये अपनी कल्पना से उन घटनाओं के अनुकूल परिस्थिति की संरचना में दत्त चित्त दृष्टिगोचर होते हैं। जिससे संस्कृत साहित्य में रुक्मिणी हरणात्मक् विपुल मौलिक वैविध्य पूर्ण ग्रन्थकों से अत्यन्त समृद्ध संलक्षित होता है।

चतुर्थ अध्याय

अध्याय चतुर्थ

{सुधी सुधा निधि} → व्यक्तित्व एवं कृतित्वः

भारतीय संस्कृत साहित्य के प्रथम चरण के महाकवियों की यह मुख्य विशेषता रही है कि स्वयं को मानव मात्र की अनुभूति के रूप में मात्र रचनाओं में ही प्रकट करते थे। अपने व्यक्तिगत परिचय के विषय में सर्वथा मौनित्व का ही आलम्बन करते थे। जैसा कि कालीदास, बाल्मीकि प्रभृति के विषय में देखा जाता है। परिणाम स्वरूप उनके विषय में अनेक प्रकार की किम्बदन्तियाँ जन्म लेती है एवं कवि के चरित्र का काल्पनिक बखान होता है।

किन्तु विचित्र मार्ग के कवियों ने यह परम्परा तोड़ी एवं सातवीं शताब्दी के वाण भट्ट ने सर्वप्रथम स्वपरिचयाख्यान की उचित विधा को जन्म दिया (दे० हर्षचरित्र प्रस्तावना) बाद में श्रीहर्ष प्रभृति के कवियों ने ग्रन्थान्त में अपने परिचय के साथ-साथ स्वचरित ग्रन्थों का भी नामोल्लेख करने की परम्परा प्रारम्भ की। नैषधीय चरित के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्रीहर्ष ने अपने वंश परिचय के साथ अपने एक-एक ग्रन्थ का नाम भी उल्लिखित करते गये है। आज भी उनके सभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं है किन्तु यदि वे स्वयं ही उन ग्रन्थों का नाम न लिखते तो उन कृति का नाम तक किसी को पता न होता।

ग्रन्थान्त में निज परिचय देने की श्रीहर्ष की विधि को पं० काशीनाथ शर्मा जी "सुधी सुधा निधि" ने भी पारम्परिक रूप से अंगीकृत किया एवं प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक श्लोक द्वारा अपना परिचय दिया है न जो अनेक अध्येताओं के लिए उनका व्यक्तित्व जानने में सहायक है। अन्तिम इक्कीसवें सर्ग के अन्तिम श्लोक में कवि ने अपनी रचना का काल भी लिखा है।

जीवन परिचय--

पं० काशीनाथ शर्मा "सुधी सुधा निधि" का जन्म विक्रमीय संवत् १९५७ को हुआ था। मास ज्येष्ठ एवं तिथि अमावस्या दिन शुक्रवार था। इनके पिता रुद्रदत्त एवं माता कौशल्या थीं। श्री रुद्रदत्त द्विवेदी जी शैव थे एवं अत्यन्त विद्वान पुरुष थे।[१२९] ये गौतमगोत्रीय सरयूपाणि ब्राह्मण परिवार से सम्बद्ध थे। यह तथ्य ग्रन्थ की पुष्पिका से ज्ञात है।

"इति सरयूपारीण पण्डितेन सुधी सुधानिधि पदमासा गौतमगोत्रेण श्री मत्काशीनाथ शर्मणा द्विवेदिना---।" इस प्रकार उत्तम कुल एवं उच्च धार्मिक संस्कारों एवं वातावरण में सुधीसुधानिधि जी का पालन हुआ था, यह स्पष्ट है। सम्भवतः आपका पूरा परिवार संस्कृत शास्त्री की उच्च शिक्षा में रुचि रखता था। शर्मा जी के चचेरे भाई श्री कण्ठ शर्मा जी ने रुक्मिणी हरण का प्रकाशन भार सम्भाला था। इनके पुत्र श्री पं० जगदीश शर्मा द्विवेदी श्री ज्योतिष के सिद्धान्त फलित एवं गणित के आचार्य हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ का संशोधित पाठ तैयार किया था। ऐसी सूचना पुस्तक के मुख्यपृष्ठ की सामग्री से प्राप्त होता है।

व्यक्तित्व :- पं० काशीनाथ शर्मा जी का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था।

१३०- कौशल्ययाम्बुधिशरागं० धरामितेऽब्दे।। (रू० ह० २१/१०५)

१३१- दर्शे कवौ तपसि यस्तयः प्रसूतः ।। (वही)

१३२- अध्यानन्दवनं शिवां डिघ्रानिरतः श्रीरूद्रदन्तः सुधी।।

कौशल्या च यमात्मबोधपरमं प्रासूत देवी सुतम।। (यही श्लोक प्रत्येक सर्गान्त में है।)

रू० ह०१/ १७४

ये अपनी संस्कृति पर अखंड विश्वास करते थे। इनका पहनावा अत्यन्त सादगी पूर्ण था। धोती से लिपटी काया वाले शर्मा जी सादा जीवन उच्च विचार पर विश्वास रखते थे। इनकी भाषा में हिन्दी अत्यन्त प्रिय थी। यह अपना अधिकांश समय भगवान शिव की आराधना में व्यतीत करते थे। कभी-कभी कविराज अट्ठारह-अट्ठारह घण्टे तक भगवान शिव की आराधना में व्यतीत करते थे। आप प्रसाद रूप में भगवान शिव का प्रसाद भांग भी लेते रहे। यह अत्यन्त गम्भीर स्वाभिमानी तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे।

आपका पारिवारिक जीवन परम्परागत ही था। इनके परिवार में पर्दा प्रथा प्रचलित थी। इनकी पौत्री अर्चना तथा पौत्र श्रीकण्ठ जी बताते है कि इन्होंने अपनी माँ को घर आये घनिष्ठ पारिवारिक मित्रों के समक्ष पर्दा रहित नहीं देखा। कवि श्री शर्मा जी को गौ सेवा पर असीम श्रद्धा और भक्ति थी। काशीनाथ शर्मा जी का प्रेरणा स्त्रोत एक छात्र था, जो कविवर के समीप प्रायः आता रहता था और कालिदास, भव भूति, माघ, श्री हर्ष आदि के रुचिकर श्लोकों को सुनाता था। एक बार श्लोकों को सुनते हुए कविवर बोले, इन्हें क्यों सुनाते हो इनका समन्वय होगा। इसके बाद समय बीतने पर छात्र अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया। इस घटना से क्षुब्ध होकर गुरू ने इनको रचने का दृढ़ संकल्प किया। इस तरह वह छात्र रुक्मिणीहरण की रचना का प्रेरणा स्त्रोत बना।

अपने रहन-सहन में वे स्वयं ऊँचे तखत पर बैठते थे। कविवर काशीनाथ शर्मा जी अतिथि के आगमन पर उसे अपने समकक्ष स्थान न देते थे, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो। उन्होने स्वयं महामना मदन मोहन मालवीय जी को भी अपने समकक्ष स्थान न दिया। यह अतिथि के बैठने के लिये भूमि पर गद्दे आदि डलवा कर बैठने का स्थान बनवाते थे।

कविवर का माँ सरस्वती से इतना प्रगाढ़ स्नेह था कि आपने विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती जी की मूर्ति से युक्त एक पलंग बनवाया था। यह पलंक मुजैक

से निर्मित था। इस पर हंस तथा कमल भी आसीनस्थ थे। यह अयाचित जीविका में विश्वास रखते थे। आपका आदर्श था-

अनाथ सेन मरण विनादन्येन जीवनम्।

देहि में कृपया शम्भो त्वामि भक्तिम वचंलाम्।।

अयाचित जीविका युक्त जीवन व्यतीत करने के लिए आपने १६४२ से १६४५ तक पत्तियाँ खाकर क्षुधा मिटाई। साधारणतया आप खाने के शौकीन थे।

कविवर के प्रेरण स्त्रोत आपके समधी उमापति जी भी रहे। कविवर के पारिवारिक लोगों से ज्ञात होता है। कि उमापति जी ने जब "पारिजात हरणम्" को स्वरूप प्रदान किया तो कविवर काशीनाथ जी महाकाव्य रुक्मिणीहरणम् की रचना रचने को प्रेरित हुए।

कविवर काशीनाथ द्विवेदी जी ने किसी विद्यालय से नियमित शिक्षा नहीं ग्रहण की। इन्होंने प्रायः अपने गृह में ही विभिन्न विषयों का स्वाध्याय किया। ये अत्यन्त ही मेधावी एवं परिश्रमी थे। किसी भी विषय को सहज में ही ग्रहण करने की अद्भुद क्षमता थी। लगभग डेढ़ वर्ष तक स्वामी मनीषानन्द जी तीर्थ के श्री चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण की। इन्होंने वे वेदांग, षड्दर्शन काव्यशास्त्र आदि का विधिवत् अध्ययन किया था। ये गद्य और पद्य दोनों ही श्लाध्य थे। इनके असाधारण वैदुष्य से प्रभावित होकर पंडित ने इन्हें "सुधीसुधानिधि" की उपाधि से विभूषित किया था।

शर्मा जी अत्यंन्त उच्च्य कोटि के विद्वान् एवं भगवद् भक्त थे। उन्हें सांसारिक उपलब्धियों के प्रकृति कोई भी राग नहीं था सम्भवतः इसी कारण उनके लिए--

"सारस्वत पारावार पार दृश्वना त्याग तपोभूर्तिना सुधीसुधानिधि पदभजा------" इत्यादि विशेषण दिये गये हैं। [१३३] शर्मा जी की विद्वता के विषय में कुछ भी लिखना

१३३- दृष्टव्य - ग्रन्थ का प्रथम पृष्ठ

अपर्याप्त है क्योंकि परीक्ष्यमाण ग्रन्थ "रुक्मिणी हरणम्" का प्रत्येक श्लोक उनके विशाल ज्ञान शब्द प्रयोग सामर्थ्य कल्पना प्रवणता एवं कवित्व शक्ति को उसी प्रकार से प्रकाशित करता है जिस प्रकार सूर्य की किरणें संसार के विविध वरणों को। शर्मा जी न केवल साहित्य शास्त्र एवं व्याकरण के महापण्डित थे। अपितु वे धर्मशास्त्र, नीतिदर्शन, अर्थशास्त्र आदि व्यवहारिक शास्त्रों में भी निष्णांत थे। जिसका निर्दशन महाकाव्य में पदे-पदे प्राप्त होता है। जैसा कि पण्डित जी ने स्वयं ही महाकाव्य की भूमिका में लिखा भी है--

"येन साहित्याऽनन्द सहकारेण भूयो भविक मनु भवन्तु निखिल भवभूति भाजो नीति-सुकृत दर्शनाभ्युदय सम्पादक समुचित सदाचार प्रभृतीनां तत्प्रति पादकांना प्रामाण्यस्य च परिज्ञानेन तेषां यथावदनुष्ठानेन भगवच्चरणारविन्दयोर्भूयो भूयोऽनुसंधानेन च।"

सम्भवतः इनके पिता के बड़े भाई पं० उमापति शर्मा" अद्वयं का प्रमुख योगदान था।[१३४]

काशी के वातावरण का स्पष्ट प्रभाव शर्मा जी के प्रभावी व्यक्तित्व पर दिखाई देता है। उन्होंने यद्यपि काव्य रचना वैष्णव परम्परा के अनुकूल किया है तथापि शिवभक्ति के स्वसंस्कार का स्फुटन प्रकट किया है। रुक्मिणी हरण के प्रस्तावना का शुभांरभ- ॐ शिवाभ्यां नमः" से करते हुए मंगलाचरण में शिव एवं विष्णु दोनों महादेवों की शक्तियों को प्रणाम किया है।

विद्वांसः संश्रयन्तां मुरारिपुगृहिणीपादपाथोजरेणन्।
सेवन्तां शैलकन्यामपि च कतिपये नस्तु मातस्त्वमेव।। (प्रस्तावना श्लोक)

इसी प्रकार गद्य भाग के प्रारम्भ में भगवान् शिव का निम्नवत् स्मरण करते

१३४- जयति जनकज्यायान् विद्वानुमापतिरद्वयो। जयति च गुरूर्लोकानां तन्मनीषिपदाम्बुजम।।
(उपोद्घातश्लो० ३)

हैं।

"इदं तावान्निखिल भवभभिनय तो भगवतो भवानीपतेरनुकम्पया मया समपूरि रुक्मिणी हरणं महाकाव्यम्।।

'रुक्मिणीहरण' महाकाव्य के सर्ग १४ को कवि ने पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण के शिवार्चन स्तुति एवं शिव विष्णु के तात्विक अभेद की प्रस्थापना में व्यय करके निज जीवन में भूतभावन के प्रति दृढ़ आस्था का परिचय दिया है। इस प्रसंग का विशेष उल्लेख आगे अध्याय में किया जाना है।

कृतित्वः- पं० काशीनाथ शर्मा जी में प्रतिभा एवं वैदुष्य का मणिकाञ्चन योग रहा है। इन्होंने अपनी नव नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा के द्वारा संस्कृत जगत् को आधुनिक काल में रुक्मिर्णाहरण महाकाव्य जैसा काव्यरत्न को देकर सुरभारती के कोष में श्री वृद्धि की है। इनके कृतित्व की महत्ता पर इसी से प्रकाश पड़ता है कि इन्होंने रुक्मिणीहरण जैसे लघुतम विषय को लेकर महाकाव्य की रचना की है। कवि जी विलक्षण प्रतिभा एवं मेधावी हैं, यह देन है कि उसने सहसा ही महाकाव्य की रचना की है। कवि का एक मात्र रुक्मिर्णाहरण महाकाव्य ही संस्कृत साहित्याकाश में कलानिधि की तरह कीर्ति-कौमुदी को बिखेर रहा है।

कविवर काशीनाथ द्विवेदी सुकवि के साथ ही साथ एक अच्छे वक्ता भी थे। उन्होंने अनेक स्थानों पर जाकर सुरुचि पूर्ण भाषण भी दिये थे। उनका एक महत्वपूर्ण भाषण वाराणसी से प्रकाशित "सम्भाषणम्" पत्र में प्रकाशित हुआ है जिसके प्रकाशक श्री रामनाथ शुक्ल व्याकरणाचार्य है।

कविवर काशीनाथ द्विवेदी संस्कृत के तो कवि थे ही साथ ही साथ खड़ी बोली और उर्दू में भी रचनायें करते थे। यहाँ हम उनके द्वारा विरचित खड़ी बोली की कविता

तथा उर्दू की एक शायरी प्रस्तुत कर रहें।-

(क) खड़ी बोली में कविताः-

अरुणिमा पदपकंज की न थी, सिमिट के पटु शोभित थी उषा।

समय हो दिन के अधिकार से, चरण के शरणगत हो रही।।

(ख) उर्दू की रचनाः-

दिल के पर्दे में छिपा मजनू मेरा

आँखे रहते भी मुकद्दम सूर हूँ।।

शर्मा जी बीसवीं शताब्दी के होते हुए भी मात्र एक महाकाव्य के बल पर अमरत्व प्राप्त कर चुके हैं। इनके अन्य काव्य कृतियों का प्रयास करने पर भी ज्ञान नहीं हो पाया था। किन्तु रुक्मिणी हरण का काव्यात्मक परिपक्वता से अनुमान किया जा सकता है कि शर्मा जी के अन्य अनेक काव्य रचनायें होंगी जो अभी प्रकाश में नहीं आ पाई है।

महाकाव्य के विषय में :- कविवर काशीनाथ द्विवेदी, में प्रतिभा एवं वैदुष्य का मणिकाञ्चन योग है। उनके महाकाव्योद्यान में नव नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा नवयौवना नहीं के सदृश सर्वत्र अभिसार कर रही है। अपनी प्रज्ञावटी को विलसित एवं विभूषित करने के लिये कवि ने उसे वैदुष्य रूपी आवरण से सजाया है। कहीं-कहीं कवि प्रतिभा एवं वैदुष्य में सहज सामञ्जस्य बिठाकर चल रहे हैं, तो कहीं-कहीं प्रतिभा वैदुष्य का और वैदुष्य प्रतिभा का अतिक्रमण सा करते हुए दिखाई दे रहे हैं। कवि की लोकोत्तर प्रतिभा और अकुण्ठित विद्वता उन्हें संस्कृत कवि शिरोमणियों की श्रेष्ठ पंक्ति में बिठा देती है।

रुक्मिणीहरण की रचना शर्मा जी ने अनेकानेक सामयिक कठिनाइयों का

सामना करते हुए भी उत्तम काव्य के रूप में किया है।

प्रस्तावना में वे स्वयं ही लिखते है।---

"अविरतं परिततोऽस्य जगतः समुद्धरणं केवलं भाषाणादिभिरसम्भवं तेषां प्रभावस्य क्षणिकत्वादिति मध्य मध्ये विनिपतत्यापि विकटविशकंटसंकटसमये निरमायि।।"

विवेच्य महाकाव्य ग्रन्थ रचनाओं के ऐसे युग में रचा गया है, जब ग्रन्थों के लेखकत्व एवं प्रकाशन आदि के विषयों में अनेकानेक नियमोपनियम बन चुके थे। प्राचीन ग्रन्थों के लेखक का नाम श्रद्धा के कारण जनसामान्य एवं उनके अध्येता सुरक्षित रखते थे एवं उनका प्रकाशन गुरुमुख से अध्ययन के माध्यम से अथवा हस्तलेखों की प्रतिलिपि के माध्यम से योग्य अधिकारियों के मध्य होना था, किन्तु आज के युग में कापीराइट के कानून न ही लेखक के नाम एवं प्रकाशनाधिकार सुरक्षित रखते हैं।

शर्मा जी ने अपनी इस अमूल्य कृति के प्रकाशन सम्बन्धी सभी अधिकार अपने पुत्र एवं अपत्यसन्ततियों को दिया है। शर्मा जी के ही शब्दों में---

"अत्रेदभवधेयम्-अस्य ग्रन्थस्य सकलोऽप्यधिकारो मया मत्तनुजषे चिरंभावुकाय श्री जगदीश शर्मणे द्विवेदिने क्रमस्तदगं जातवंशज सकलपुरुषार्थपरम्परायै च प्रतिपाद्यते। न कश्चिदन्योऽत्र कस्याचिंदपि भाषायां टिप्पणं व्याख्यामनुवादमस्य प्रकाशनाऽदिकं वा तान्निदेशमन्तरा कर्तुमधि करोतीति।" (प्रस्तावना पृ० २)

ग्रन्थ रचना कालः- कवि ने महाकाव्य के अन्य ग्रन्थ रचना का विक्रमीय संवत् में काल निर्देश इस प्रकार किया है।

"श्री रुक्मिणीहरणमेतदपूरि तेन, काव्यं द्वियुग्मगगनाक्षणि विक्रमस्य।।"

(रु० ह० २१/१०५)

तदनुसार इसका प्रकाशन सं० २०२२ में अथवा १९६५ ई० में हुआ था।

इसका प्रकाशन १६६६ ई० यो २०२३ विक्रमीय में वाराणसी से स्वयं द्विवेदी जी के संभ्रातृक पं० श्रीकण्ठ शर्मा द्विवेदी ने किया। इतने उत्तम काव्य रचना के मुद्रण का सौभाग्य पं० शिवनारायण उपाध्याय के नया संसार प्रेस, भदैनी वाराणसी को प्राप्त हुआ।

महाकाव्य की कथानक शैलीः- शर्मा जी ने इस महाकाव्य को २१ सर्गों एवं २४३६ श्लोको में उपनिबद्ध किया है।

कथानक को रुक्मिणी परिणय के परिष्कृत स्वरूप के प्रतिपादक ग्रन्थ श्रीमद्-भागवत् महापुराण से ग्रहण कर उसे अत्यन्त मनोहारी रीति से उपस्थित किया है। अंत्यन्त संक्षेप में विवेच्य महाकाव्य का विस्तार अधोलिखित रुप में देख सकते हैं।

प्रथम सर्गः-

कवि प्रथम सर्ग में विदर्भ मण्डल में स्थित कुण्डिनपुर का वर्णन करता है। इसी नगर के शासक के रूप में अवनीन्द्रमण्डलीमुकुट महाराज भीष्मक का वर्णन करता है। महाराज भीष्मक के यहाँ रुक्मिणी नामक कन्या जन्म लेती है, जो कि अपने सौन्दर्य एवं गुणों के द्वारा साक्षात् इन्दिरा ही है। कवि रुक्मिणी के बाल्यावस्था का वर्णन करता हुआ युवावस्था तक पहुँच जाता है और उसकी अलौकिक रूपराशि के वर्णन के सन्दर्भ में कवि रुक्मिणी के नख-शिख का वर्णन करता है। अपनी अनिन्द्य सुन्दरी सुता को विवाह के योग्य देखकर महाराज भीष्मक को उसके विवाह की चिन्ता होती है। यहीं कवि अपने परिचय के साथ प्रथम सर्ग को समाप्त कर देता है।

द्वितीय सर्ग-

द्वितीय सर्ग के प्रारम्भ में नृपति भीष्मक अपने अन्तःपुर में पटरानी के साथ

रुक्मिणी के विवाह के विषय में चिन्ता कर ही रहे थे कि तभी उन्होंने महामुनि नारद को देखा। यहाँ कवि ने कई श्लोकों के द्वारा नारद का वर्णन किया है। नारद को देखकर नृपति सिंहासन का परित्याग कर अपनी पत्नी के साथ उनके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं। इसके पश्चात् नृपति सुन्दर रूप एवं शील वाली रुक्मिणी नामक कन्या को बुलाकर प्रणाम करवाते हैं। तदनन्तर महर्षि नारद की आज्ञा से नृपति भी सिंहासन को सुशोभित करते हैं। नृपति भीष्मक नारद का सत्कार करते हुये उनके शुभागमन से अपने को कृतकृत्य मानते हैं। वे देवर्षि नारद से निवेदन करते हैं कि उनका जिस लिये आगमन हुआ है, उसे वे कहें ताकि वे उनकी आज्ञा का पालन कर सकें, साथ ही देवर्षि नारद से वे यह भी निवदेन करते हैं कि वे उनकी कन्या के लिये किसी अनुरूप वर को बतलावें। नृपति के इस कथन के पश्चात् देवर्षि नारद उनकी वाणी की प्रशंसा करते हुये अपने पिता ब्रह्मा जी की महिमा का गायन करते हैं। इसके पश्चात् वे उनकी पुत्री को श्रेष्ठ वर को देने की बात करते हैं और तदर्थ भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन करते हैं। वे बतलाते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण माया के द्वारा इस जगती बल पर अवतार लेते हैं। इसी सन्दर्भ में वे कच्छप, बराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम अवतारों का वर्णन कर भगवान् कृष्ण के अवतार पर प्रकाश डालते हुये उनकी अनुपमेय लीलाओं एवं रूपराशि का वर्णन करते हैं। भगवान् कृष्ण के अलौकिक गुणों का वर्णन करते हुये वे नृपति भीष्मक से निवेदन करते हैं कि आप भी जिस प्रकार से हिमालय ने अपनी पुत्री भगवान् शिव को समर्पित की थी उसी प्रकार से अपनी इस अनिन्दितांगी तनुजा को उन भगवान् श्रीकृष्ण को ही समर्पित कर दें अर्थात् उन्हीं के साथ विवाह कर दें। यह आपकी सुता वस्तुतः परमात्मा की परा प्रकृति ही आपके घर में अवतीर्ण हुयी है। इस प्रकार नृपति भीष्मक से यह निवेदन कर उनके द्वारा प्रणमित देवर्षि नारद आकाश मार्ग के द्वारा अपने धाम को प्रस्थान करते हैं और कवि परिचय के साथ ही द्वितीय सर्ग समाप्त

होता है।

तृतीय सर्गः-

देवर्षि नारद के पूर्वोक्त वचनों से प्रभावित होकर रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण कर लिया अर्थात् वह हृदय से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त हो गयी। जिस प्रकार से लाञ्छन चन्द्रमा को नहीं छोड़ता है, अग्रशायिनी कृष्ण आभा स्तन को नहीं छोड़ती हैं। उसी प्रकार से उसके हृदय कमल ने कदाचिदपि भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं छोड़ा। उसका हृदय सर्वतोभावेन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित हो जाता है और वह श्रीकृष्ण के लिये व्यथित होने लगती है। यद्यपि वह अपने अनुराग को हठात् छिपाती है, परन्तु उसके लक्षणों के द्वारा उसकी सखियाँ उसके अनुराग को समझ लेती है। उसके विविध हावभावों एवं आडिक विकारों से उसकी सखियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनुरक्त उसके हृदय को समझ लेती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के वियोग से उसके अंग तनुता को प्राप्त हो जाते है। वियोग से तनुता को प्राप्त हो जाने पर भी वह और अधिक चारुता की प्राप्त कर लेती है। उसकी इस स्थिति को देखकर जननी अत्यन्त उद्विग्न चित होकर उसके समीप पहुँचती है। समीप आई हुयी जननी को देखकर रुक्मिणी आसन का परित्याग कर नम्रमुखी होकर उन्हें प्रणाम करती है। जननी शुभाशीर्वादपूर्वक उसका आलिंगन कर आसन पर बैठ जाती है और उसके रोग के विषय में चिन्ता करती है। सखियों से वह इस प्रकार निवेदन करती है कि मैं उपयोगी भेषज जानती हूँ, परन्तु बिना परीक्षण के भेषज उचित नहीं है। हे सखियों ! तुम सब मेरी पुत्री का मनोविनोद करो क्योंकि इसमें मेरे प्राण निवास करते हैं। इसके पश्चात् वह वहाँ से आ करके सब कुछ भूपति से निवेदन करती है। भूपति अनेक वैद्यवरों के साथ रुक्मिणी के यहाँ पहुँचते हैं। मिषग्वर विविध प्रकार के परीक्षणों के पश्चात् भी उसके रोग का

कारण नहीं जान पाते हैं और वे लज्जा से नम्रमुख होकर विनयपूर्वक राजा से निवेदन करते हैं कि यदि इसे भगवान् श्रीकृष्ण रूपी वैद्य प्राप्त हो जायें तो यह पूर्व स्थिति को प्राप्त हो सकती है। दुर्बल और पीली इस कन्या में हमें रोग के लक्षण नहीं प्राप्त हो रहे हैं। यह निवेदन कर वैद्य लोग वहाँ से चले जाते हैं। इसके पश्चात् राजा मन्त्रियों के साथ में मन्त्रणा करता है। मन्त्रियों का विचार है कि रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करे। चन्द्रकला भगवान् शिव के मस्तक पर ही शोभा देती है। मन्त्री यह सुझाव देते हैं कि तब तक कुमारी रुक्मिणी को उसकी प्रिय सखियाँ रुक्मिणी को धैर्य बँधाती हैं। सखियाँ उसे बतलाती हैं कि तुम्हारा शीघ्र ही स्वयंवर होगा जिसमें तम स्वयं अपने पति का वरण करोगी, अतः तुम्हें वियोग नहीं करना चाहिये। स्वयंवर के द्वारा तुम अपने मनोवाञ्छित प्रिय को प्राप्त कर सकोगी। स्वयंवर में पतिवरण की स्वतन्त्रता होती है अतएव तुम यदुपति भगवान् श्रीकृष्ण का वरण कर लेना। सखियों के इस कथन पर रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अपनी श्रृद्धा प्रकट करती है। सखियाँ उसे अनेक प्रकार से आश्वस्त करती हैं और कवि परिचय के साथ ही तृतीय सर्ग समाप्त होता है।

चतुर्थ सर्गः-

इस सर्ग में कवि ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, बसन्त इन छः ऋतुओं का अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णन प्रस्तुत करता है। कवि छहों ऋतुओं का मनोरम एवं चित्ताकर्षक वर्णन करता है। ऋतु वर्णन में कवि की सूक्ष्म दृष्टि सर्वथा श्लाघनीय है। षड्ऋतुवर्णन में भी कवि ने बसन्त ऋतु का वर्णन अत्यन्त ही विस्तार में किया है। बसन्त ऋतु के वर्णन के सन्दर्भ में कवि ने तदानीन्तन लता, प्रसून, पादप, अलि, सलिल, वनस्थली आदि का स्वाभाविक एवं मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। विरहोत्कण्ठिता रुक्मिणी को उसके परिजन उसे आह्लादित करने के लिये उद्यान में ले जाते हैं। उद्यान

में उसे समस्त दृश्य वियोग-व्यथित होने के कारण दुःखदायी प्रतीत होते हैं, मानों इसीलिये त्रियामा करुणाकर समस्त दृश्यों को आवृत कर लेती है, परन्तु इस अनुकूल समय में भी कामदेव उज्जृम्भित होने लगता है और विरहानल के उद्दीप्त होने से मानों रुक्मिणी के वचन समूह के व्याज से संसार को प्रदीप्त करने में समर्थ समुख से विरह की ज्वाला निकलने लगती है। यहीं पर कवि परिचय के साथ चतुर्थ सर्ग समाप्त हो जाता है।

पञ्चम सर्गः-

इस सर्ग में कवि रात्रि का वर्णन अत्यन्त ही विस्तार के साथ आलकांरिक रूप में प्रस्तुत करता हैं प्रारम्भ में कवि सायंकाल का स्वाभाविक चित्रण करता है और तदनन्तर रात्रि का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण शैली में वर्णन करता है। रात्रि वर्णन के सन्दर्भ में चन्द्रमा का वर्णन किया गया है। तदनन्तर कुमारी रूक्मिणी विविध प्रकार से चन्द्रमा को उपालम्भ देती है। कवि का चन्द्रोपालम्भ वर्णन वैदुष्य एवं गाम्भीर्य की प्रतिमूर्ति है। रुक्मिणी कहती है कि हे कलानिधे! न जाने मेरा वक्षस्थल ब्रह्मा ने दम्भोलि के सारभाग से बनाया है, जो कि तुम्हारे द्वारा और वियोगाग्नि के द्वारा न तो छिन्न हुआ, न फट गया और न विदीर्ण हुआ। इस प्रकार तरह-तरह से चन्द्रमा को उपालम्भ देती हुई नायिका रुक्मिणी अपने आन्तरिक भावों को छिपाती हुई सी मुहूर्त्तमात्र के लिये चुप हो जाती है, परन्तु अश्रु, निःश्वास, रोमाञ्च और कम्पन के द्वारा उसका कामभाव और अधिक प्रकाशित होने लगता है। उसकी इस दशा को देखकर उसकी सखियाँ भी भावविह्ल होकर चित्रलिखित के समान सुशोभित होती है। यहीं पर कवि अपने परिचय के साथ पञ्चम सर्ग को समाप्त करता है।

षष्ठ सर्गः-

इस सर्ग में कामाभिभूत रुक्मिणी विविध प्रकार से कामदेव को उपालम्भ देती है। भगवान् कृष्ण के वियोग से व्यथित मानस रुक्मिणी अनेक प्रकार से भगवान् अनंग की आलोचना करती है। एक स्थान पर तो वह यहाँ कह डालती है कि जो कामदेव भगवान् शिव के नयनानल में दग्ध होकर भी अगणित मानसों में उत्पत्ति को प्राप्त करता है उस दग्ध रुधिर वाले कामदेव का रक्तबीज के समान भला कैसे विनाश हो सकता है? इस प्रकार अनेक प्रकार से कामदेव को उपालम्भ देती हुई रुक्मिणी मन्मथ जन्य व्याधि से पीड़ित होकर अतएव नेत्रों को निमीलित कर वायुरहित स्तिमित वीचिलतासदृश निश्चल हो जाती है। इस प्रकार रुक्मिणी की मूर्च्छा का प्रतिपादन करने के पश्चात् संक्षेप में कवि परिचय प्रस्तुत किया जाता है, यहीं पर यह सर्ग समाप्त हो जाता है।

सप्तम सर्गः-

इस सर्ग में कामदेव के द्वारा विनष्ट चेतना वाली रुक्मिणी को उसकी सखियाँ चारों ओर से घेर लेती हैं। वे अत्यन्त आश्चर्य का अनुभव करती हुई रुक्मिणी की मूर्च्छा अपनोदन के लिये प्रयत्न करती है, परन्तु असफल ही रहती हैं। अतएव उन्हें सम्प्रति क्या करना चाहिये ? इस विषय में वे निश्चय नहीं कर पाती है। सखीजनों के स्तब्धता के प्राप्त कर लेने पर और वायुमण्डल के स्तम्भित हो जाने पर मूर्च्छित रुक्मिणी को देखकर चन्द्रमा भी मालिन्य को प्राप्त हो ज़ाता है। रुक्मिणी के सन्ताप को दूर करने के लिये सखियाँ सलिल, चन्दन आदि शीतल पदार्थों को लाती हैं और उनके प्रयोग से जब वे रूक्मिणी के सन्ताप को और बढ़ा हुआ देखती है तो वे अत्यधिक आश्चर्य का अनुभव करती है। इस प्रकार उसके बढ़े हुये सन्ताप को देखकर कोई सखी कदलीदल को, कोई कमलपत्र को और कोई उत्तरीय को लेकर उसके ऊपर व्यंजन करती हैं। परन्तु

उन सबके द्वारा किया गया व्यजन भी उसकी ऊष्मा के प्रशमन में समर्थ नहीं हो पाता है। प्रत्युत शीतल सभीरण के सेवन से उसका मनोभव ज्वर और अधिक बढ़ जाता है। कामदेव के प्रस्फूरित होने पर अन्य साधनों से कामसन्तापापनयन सम्भव नहीं, अतः उस ऊष्मा के शमन के लिये प्रियजन का सगंम ही अभीष्ट होता है। जठराग्नि की तृप्ति अन्न से ही सम्भव है, अन्य उपायों के द्वारा नहीं। इस प्रकार कामाभिभूत व्यक्ति को भेषज भी उसकी प्रियतम की प्राप्ति ही है, अन्य नहीं। उसकी प्रचण्ड कामपीड़ा को देखकर सखियाँ पुनः पुष्पों के द्वारा कामपीड़ा प्रशमन का यत्न करती है, परन्तु पुष्प प्रयागों से उसका कामसन्ताप और अधिक बढ़ जाता है और कुसुमसंहति उसका स्पर्श प्राप्त कर शुष्कता को प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार उसकी सखियों के द्वारा काम सन्तापापनयन के जो भी प्रयत्न किये जाते हैं, वे सब विफल हो जाते हैं। इसी मध्य सखी के मुख से भगवान् कृष्ण के नाम के श्रवण से रुक्मिणी शनैः-शनैः चेतना को प्राप्त हो जाती है और उसके दोनों नेत्रोत्पल खिल उठते है। इसके अनन्तर उस रुक्मिणी को शिविका पर चढ़ाकर उसके महल की ओर ले जाया जाता है और कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

अष्टम सर्गः-

इस सर्ग प्रारम्भ में भीष्मक नृपति सभा में पहुँचकर राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं। कवि सभा का सुन्दर चित्रण करता है। सभा में पहुँचकर नृपति भीष्मक अपनी पुत्री रुक्मिणी को भगवान् श्रीकृष्ण को देने का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। नृपति भीष्मक के इस प्रस्ताव का अमात्य हृदय से अनुमोदन करता है। नृपति भीष्मक भगवान् श्रीकृष्ण के असामान्य गुणों का भी वर्णन करते है। वे अपनी पुत्री रुक्मिणी के लिये कंस निपूदन यदुप्रवीर भगवान् श्रीकृष्ण को ही अनुरूप मानते है। कृष्ण के स्वभाव

के विषय में प्रकाश डालते हुये वे कहते हैं कि उन्हें न लोभ है, न भय, न द्वेष, न क्रोध, वे लोक कल्याण को देखते हुये व्यवहार कर रहे हैं। अन्त में अपने कथन का उपसंहार करते हुये वे स्पष्ट करते हैं कि मेरी रुक्मिणी साक्षात् लक्ष्मी है और कृष्ण साक्षात् नारायण है। जिस प्रकार से सरोजश्री इन्दीवर का प्राप्त होती है, सौदामिनी मेघ को प्राप्त होती है, गंगा समुद्र को प्राप्त होती है उसी प्रकार से यह लक्ष्मी रुक्मिणी भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करे। नृपति भीष्मक के इस वक्तव्य को सुनकर उनका अनुमोदन करता हुआ प्रधानामात्य इस प्रकारं कहता है कि मेरी पुत्री रुक्मिणी अद्वितीय श्री है और कृष्ण भी अलौकिक है। प्राणियों के कल्याण हेतु और लोकों की स्थिति का कारण, इन दोनों का सम्बन्ध पृथ्वी और पुष्कर के सदृश है। संसार में अन्य कोई भी पुरुष मेरी पुत्री रुक्मिणी के योग्य नहीं है। सभा में उपस्थित लोगों के बदनों की प्रफुल्लता से मैं यह अनुमान कर रहा हूँ कि मेरा यह मत आप सबको अभीष्ट है। हे राजेन्द्र ! इसलिये आपको शीघ्र ही पुत्री रुक्मिणी का पाणिग्रहण भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सम्पन्न करा देना चाहिये। प्रधानामात्य के इस प्रकार के वचनों को सुनकर कुद्ध होते हुये राजकुमार रुक्मि इस प्रस्ताव का विरोध करता है। वह कहता है कि नेत्रों के शक्तिहीन हो जाने से कानों से बहुत कुछ सुने जाने के कारण वृद्ध लोगों की षष्टिवर्षीय बुद्धि दृश्यविषय को नहीं देख पाती है। यह प्रधानमन्त्री अत्यधिक वाग्मी है, अन्य लोग मोनावलम्बी हैं, वाचालता से ही लागों की प्रधानता बढ़ती है। जहाँ स्त्री, प्रमत्त, बालक और वृद्धों का मत विजृम्भित होता है वहाँ अभ्युदय की तो बात ही क्या, विनाश निश्चित है। उन कृष्ण की क्या कीर्ति है? उनमें कौन से गुण हैं ? उसके सभी अंगों में मानसी कृष्णता परिलक्षित हो रही है। गोपनन्द के घर में बछड़ों के साथ बड़ा हुआ है, वह वसुदेवसुत कृष्ण आभीर है। पहले वह गोपाल रहा और सम्प्रति वसुदेव को अपना पिता बता रहा है। अज्ञात कुल में उत्पन्न ऐसे पुरुष को कन्यारत्न प्रदान करते हुये अज्ञान से नष्ट चेतना वाले आप लोगों की

कुलीनता को नमस्कार है।

यदि पशुओं के निग्रह में ही विक्रम परिसीमित है तो ऐसे अनेक पशपाल लगुड़ों के द्वारा स्थान-स्थान पर पशुओं को पीटते रहते हैं। बेचारा कंस सिंहासन से गिरकर स्वतः मृत्यु को प्राप्त हो गया। चालाकी से कृष्ण कूंदकर उसके वक्षःस्थल पर बैठ गये और इस प्रकार कीर्ति को प्राप्त कर ली। कालयवन के डर से अपने आवास को छोड़कर द्वारका को अपना निवास स्थान बनाया। यदि उन कृष्ण में साहस होता तो अपने निवास स्थान को छोड़कर क्यों भागते ? नवीन नगर के निर्माण में उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति व्यय कर दी है। शास्त्रकार अपने समान पुरुष के साथ सम्बन्ध करने को अनुशंसा करते हैं अतः मैं निवेदन करता हूँ यदि इसमें किसी को सन्देह हो तो उसका उत्तर धनुष है। मैंने पहले ही चेदिराज के लिये रुक्मिणी का संकल्प कर रखा है। चेदिराज शिशुपाल कुलीन, प्रसन्नात्मा, सत्यन्ध, नीतिज्ञ, कृतज्ञ और मित्रहितानुरक्त वसुदेव की स्वसा का सूनु और दमघोष का औरस पुत्र है। उसने समस्त देवताओं को परास्त कर दिया है। न कोई ऐसा हुआ है, न है और न होगा। जो जल से नमक की तरह उससे लक्ष्मी को पृथक कर सके। जरासन्धादि महाबली राजा उसकी सेवा करते है। ऐसी स्थिति में रुक्मिणी का पाणिग्रहण शिशुपाल से ही किया जाना चाहिये। इस प्रकार रुक्मि ने ज्योतिषाचार्यों के द्वारा शुद्ध लग्न को निश्चित कर पत्र को लिखकर चेदिराज शिशुपाल के पास दूतों के द्वारा भेज दिया। रुक्मि अपने पत्र में शिशुपाल को सम्बोधित करते हुये लिखता है कि हे प्रभो शिशुपाल ! मैं तुम्हारा अनुचर हूँ। शरीर, धनुष, मित्र, सेना कोष ये सब कुछ तुम्हारे लिये समर्पित करते हुये भी चित्त सन्तुष्ट नहीं हो रहा है। यह रूप एवं गुणों से युक्त मेरी भगिनी रुक्मिणी है, इसको मैं आपके चरणकमलों की दासी बनाना चाहता हूँ। रूप शील एवं गुणों से यह तीनों लोकों में अनुपमेय है, इसलिये इसे स्वीकार करो। आपके समक्ष ज्योतिषाचार्यों द्वारा निदिष्ट शुभ

लग्नों को भी भेज रहा हूँ आप शीघ्र ही अपने अनुयायियों के साथ आने का कष्ट करें। क्येंकि वञ्चनाचतुर परमापामर कृष्ण के प्रति मेरा मन शंकालु है। इसलिये आपको भी मेरे साथ सावधान रहना चाहिये क्योंकि नेत्रों को धोखा देकर विडाल भी दूध पी जाता है। रुक्मि के इन वचनों को सुनकर वह सभा स्तब्ध सी रह जाती है। इधर दूत रुक्मि के संदेश की शिशुपाल के समीप पहुँचा देते हैं। शिशुपाल इस स्नेह के बन्धन को सस्नेह स्वीकार कर लेता है और दूत आकर के इस विषय में रुक्मि को विधिवत् बतला देते हैं। कर्ण परम्परया जब इस समाचार को रुक्मिणी सुनती है तो अत्यन्त ही दुःख का अनुभव करती है। स्वाधीन अथवा पराधीन, सुभगा अथवा दुर्भगा, तरुणी अथवा बाला, सिंहनी क्या कभी खरगोश का आश्रय लेती है। निरुपाय रुक्मिणी अगाध विपत्तिसागर में निमग्न होकर अपने नेत्रों के जल को बहाने लगती है। और कवि परिचय के साथ यहीं सर्ग समाप्त हो जाता है।

नवम सर्गः-

रुक्मि के निवेदन के अनुसार चेदीश्वर शिशुपाल का कुण्डिनपर में रुक्मिणी के परिणय के लिये आगमन होता है। रुक्मि शिशुपाल के आगमन से अत्यन्त ही प्रसन्न होता है और उसका स्वागत करता हुआ सविनय अपने यहाँ ले आता है। इसके अनन्तर कवि कुण्डिनपुर नगर की सज्जा का सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत करता है। शिशुपाल के कुण्डिनपुर आगमन से रुक्मि नगर में वैवाहिक साज सज्जा के लिये तत्पर होता है। रुक्मि सेनासमेत शिशुपाल के स्वागत में लग जाता है और वैवाहिक उपकरणों को संगृहीत करने लगता है, परन्तु रुक्मिणी अत्यधिक व्याकुलता का अनुभव करती है। कुमारी रुक्मिणी की भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति ही एकनिष्ठा रति रहती है। सन्ध्या के द्वारा अन्तरित भी रात्रि दिवस को छोड़कर अन्य का अनुगमन नहीं करती है। रुक्मिणी

एक वेदवेदांगवित् द्विजवर को बुला करके उसके चरणों का स्पर्श कर उसे श्रीकृष्ण के समीप सन्देश को ले जाने के लिये कहती है। वह उस द्विजवर से निवेदन करती है कि वह शीघ्र ही उसके सन्देश को भगवान् श्रीकृष्ण तक पहुँचा दे। वह कहती है कि आप यात्रा इस प्रकार करें कि व्यर्थ में समयातिपात भी न हो तथा शरीर को अधिक कष्ट भी न प्राप्त हो। रुक्मिणी उस विप्रवर को यात्रा की विधि भी बतलाती है। मार्ग का भी निर्देश करती है तथा द्वारावती की शोभा का भी चित्रण करती है। वह उस द्विजवर से निवेदन करती है कि वह शीघ्र ही जाकर भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से अपने जन्म को सफल करें। वह कहती है कि वहाँ पहुँकर आतिथ्य स्वीकार कर कुशलादि का निवेदन कर परिश्रम के शान्त हो जाने पर स्वयं एकान्त में जाकर भगवान् श्रीकृष्ण से अपना परिचय देकर मेरे इस सन्देश को सुनाना। हे कृष्ण ! मैं तुम्हारे लोकोत्तर यश के द्वारा तुम्हें विधिवत् जानती हूँ। अतएव दूरदेश में स्थित रहते हुये भी मन के द्वारा मैं तुम्हारे चरणों का स्पर्श करती हूँ। मैं कुण्डिनपुराधीश्वर की नन्दिनी रुक्मिणी हूँ। तुम्हारी वियोगाग्नि के द्वारा अत्यन्त सन्तप्त हूँ। अपने सन्देश में रुक्मिणी अत्यन्त ही चातुर्यपूर्ण वचनों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण से निवेदन करती है कि वे कुण्डिनपुर में आकर उसके साथ विवाह करें। इस कार्य में आपको बिल्कुल विलम्ब नहीं करना चाहिए अन्यथा अनर्थ की सम्भावना है। मैं आपको अपने पति के रूप में पहले ही वरण कर चुकी हूँ, अतः किसी अन्य पुरुष के योग्य नहीं हूँ, परन्तु दुर्भाग्य से मेरा भाई मुझे चेदिराज शिशुपाल को देना चाह रहा है, अतः आप उससे मेरी रक्षा करें। हे नाथ ! आप यहाँ आकर इस कार्य के लिये युद्ध न करें। मेरे यहाँ विवाह काल से पहले नियमानुसार कन्यायें देवी पार्वती की पूजा करने के लिये नगर से बाहर जाती हैं, उस पूजा की समाप्ति पर ही आप आकर मेरा अपहरण कर लें। इस प्रकार से हे प्रभो ! आपके लिये समर्पित अनंगाभिभूत आप इस शरीर की रक्षा करें। रुक्मिणी उस विप्र से निवेदन करती है कि

मेरे इस सन्देश को भगवान् श्रीकृष्ण तक पहुँचाकर उनके उत्तर के द्वारा मेरे जीवन को शीघ्र ही सफल करें। वह द्विजवर भी रुक्मिणी को आश्वासन देकर द्वारवती के लिये प्रस्थान करता है। कवि परिचय के साथ यहीं पर सर्ग समापत हो जाता है।

दशम सर्गः-

रुक्मिणी के द्वारा प्रेरित द्विजवर तेज रथ के द्वारा द्वारकापुरी के लिये प्रस्थान करता है। द्वारावती के लिये प्रस्थान करते समय उसे अनेक प्रकार से शुभ शकुन होते है। इन शुभ शकुनों को देखकर अपने कार्यसिद्धि के प्रति सुनिश्चित रुक्मिणी प्रसन्न अन्तःकरण होकर स्वयं ही मगंलसूचक शंख को बजाती है। इसके अनन्तर उस द्विजवर के द्वारा सुशोभित वह रथ अश्वों के द्वारा बड़े वेग से ले जाया जाता है। इसके अनन्तर कवि द्विजवर की यात्रा का अत्यन्त ही मनोहर चित्रण करता है। कवि समुद्र का अत्यन्त ही विस्तार के साथ स्वाभाविक एवं सौन्दर्योपेत वर्णन प्रस्तुत करता है। समुद्र तट पर पहुँचकर द्विजवर रुकता है। कवि यहाँ समासोक्ति के द्वारा समुद्रोपालम्भ प्रस्तुत करता है। समुद्रोपालम्भ के पश्चात् कवि सुविस्तीर्ण सेतु का मनोहारी चित्रण करता है। वेगवान् रथ के द्वारा समुद्र सेतु को पारकर द्विजवर महनीय रूप वाली द्वाराकापुरी का अवलोकरन करता है। यहाँ कवि विविध प्रकार से द्वारावती नगरी का सौन्दर्य प्रतिपादित करता है। द्वारावती के लोकोत्तर सौन्दर्य का अवलोकन करते हुये वह द्विजवर शीघ्र भगवान् श्रीकृष्ण के भवन के समीप पहुँच जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के सदन के समीप पहुँचकर वह द्विजवर रथ को छोड़कर मुख्य द्वार पर पहुँचता है। द्वारपालों के निर्देश से वह शीघ्र ही श्रीकृष्ण के रुचिर हर्म्यं में प्रवेश करता है। यहीं कवि-परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

एकादश सर्गः-

भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न अलंकारों से अलंकृत, विचित्र रत्नों से जटित, आसनों से उल्लसित उस सभा भवन में पहुँचकर वह द्विजवर त्रिलोकीतिलक भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करता है, जो कि प्रमुख यदुजनों के द्वारा समुपासित हो रहे थे। यहाँ कवि अनेक प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण का मनोहारि वर्णन प्रस्तुत करता है। सभाभवन में समुपस्थित द्विजवर का भगवान् श्रीकृष्ण अत्यधिक स्वागत-सत्कार करते हैं। द्विजवर के सम्मान में वे अपने सिंहासन से उठ खड़े होते हैं। पूजनीय उस ब्राह्मण की अर्घ्य आदि के द्वारा पूजन कर मुस्कुराते हुये श्रीकृष्ण उस द्विजवर से कहते हैं कि सौभाग्य और समृद्धि के बिना द्विजोत्तमों का सहसा समागम सम्भव नहीं। मेरा आज सौभाग्य है कि आज आपके दर्शनानल के द्वारा हमारे सभी पाप भस्म कर दिये गये हैं। हे विप्रोत्तम! आप कहाँ से आ रहे हैं ? किसलिये आपने यह परिश्रम किया है ? आप कुशल से तो हैं ? भगवान् श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर वह द्विजवर अपने कथन का शुभारम्भ करता हुआ कहता है कि हे प्रभो ! आपके लिये संसार की कोई भी वस्तु अगोचर नहीं है, फिर भी लोकाचार के अनुसार मेरी वाणी अपने विषय में प्रवृत्त हो रही है। हे प्रभो! जिस फल को संयमी लोग अनेक जन्मों में अर्जित पुण्यों के द्वारा नहीं प्राप्त कर पाते हैं, उसको मैंने आपके दर्शन मात्र से ही प्राप्त कर लिया है। कुण्डिन-राजनन्दिनी रुक्मिणी आपके चरणरज से अनुराग कर रही है। उसके पिता नृपति भीष्मक उसका विवाह आपके साथ करना चाहते थे, परन्तु उसके भाई को यह अभीष्ट नहीं है। आपके प्रति अनुरागिणी वह रुक्मिणी भला अन्य पुरुष का वरण कैसे करे ? अतः हे माधव! आप कृपा करें तथा अपनी चरणदासी उस रुक्मिणी को स्वीकार करें। उस द्विजवर के इन वचनों को सुनकर रुक्मिणी के वास्तविक हृदय को जानने के लिये श्रीकृष्ण ने विरुद्ध तर्कों के द्वारा उस द्विजर्षभ को प्रारम्भ में खिन्न कर दिया क्योंकि असीम सौन्दर्य, अपार

चातुर्य, नवीन अवस्था, उत्कृष्ट कोमलता, प्रशस्त कुल, लोकोत्कृष्ट वुद्धि इन सबके रहते हुये भी यदि कन्या में मनोविरोध है तो ये समस्त चीजें विरुद्ध ही ठहरती हैं। यदि सहधर्मिणी समानवर्मा है तो देहधारियों का जीवन अकण्टक है अन्यथा दुःखदायी है। यही कारण है भगवान् श्रीकृष्ण प्रारम्भ में रुक्मिणी की प्रकृति को समझने के लिये विरुद्ध तर्कों को प्रस्तुत करते हैं। वे उस विप्रवर से कहते हैं कि मैं आपके प्रति प्रणत हूँ वंशवद और आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये उद्यत हूँ तथापि यह विचारणा समयानुसारिणी एवं उचित नहीं है। मेरे द्वारा रुक्मिणी के अपहरण किये जाने पर राजाओं एवं सैनिकों की बहुत बड़ी मारकाट होगी, मेरे विरोधी राजा लोग उसका सहयोग करेंगे। भला जरासन्धादि राजाओं को जीतकर रुक्मिणी का बलपूर्वक कैसे अपहरण किया जा सकता है ? अतः सर्प से लिपटी हुई चन्दनलता की तरह मैं उस रुक्मिणी का मन से भी स्मरण नहीं कर सकता हूँ। इस प्रकार अनेक युक्तियुक्त तर्कों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणी की प्रकृति के परिज्ञान के लिये उसके साथ विवाह के विरोध को प्रस्तुत करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार की विपरीत वाणी को सुनकर क्षणभर के लिये आश्चर्य से निश्चल नेत्रकमल वाला वह द्विजवर निस्तब्ध सागर के समान सुखोभित हुआ। उस समय वह विप्र निराशा से उपहत चित्तवृत्ति वाला तथा वात्सल्य से अत्यधिक करुणान्वित हो गया। श्रीकृष्ण के दुस्तार्कों के श्रवण से समुत्पन्न घृणा ने उसके गम्भीर हृदय सागर का पुनः मन्थन किया। रुक्मिणी के मनोरथ की संसिद्धि के लिये युगजनित कृतर्कों को उच्छिन्न करने के लिये उसके विनीत वैदुष्य ने शीघ्र ही पुनः दर्प को धारण किया। यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त होता है।

द्वादश सर्गः-

इस सर्ग में ब्राह्मण श्रीकृष्ण के समक्ष शनैःशनैः धर्मतत्त्व का प्रतिपादन करता

है। इस सन्दर्भ में वह कर्म एवं अकर्म की मीमांसा, धर्म एवं अधर्म का प्रतिपादन गहनता के साथ करता है। उसका कथन है कि धर्म एवं अधर्म की गति विचित्र है। धर्म एवं अधर्म के विवेक में देवता एवं विशिष्ट विद्वान् भी अक्षम हैं अतः इस सम्बन्ध में श्रुति ही गति है। ब्राह्मण के धर्म-प्रतिपादन में सर्वत्र उसका वैदुष्य एवं विषय प्रतिपादन चातुर्य झलक रहा है। धर्म के प्रतिपादन में उसका गम्भीर शास्त्रीय ज्ञान सर्वत्र प्रतिबिम्बित होता है। इसी सन्दर्भ में वह विप्रर्षभ विविध प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण को रुक्मिणी से परिणय के लिये प्रोत्साहित करता है। कुलीन कन्या का अनुचित वर का वरण सर्वथा निषिद्ध है। उस त्रैलोक्यसुन्दरी रुक्मिणी ने यदि त्रिलोकीतिलक आपका वरण किया है तो किसी के विरोध से क्या लाभ? इसके पश्चात् भी यदि किसी के द्वारा उस सती का वरण किया जाता है तो क्या वह स्वर्ग को छोड़कर नरक की इच्छा करेगी? वह बालिका रुक्मिणी चकोर बाला की तरह आपके प्रति समुत्सुक है। यदि आपके मुखचन्द्र के चन्द्रिका को नहीं प्राप्त कर सकेगी तो निश्चित ही अग्नि की शरण में जायेगी। इसलिये पूर्व कथित वचनों का विमर्श कर उसका पाणिग्रहण करें। जहाँ तक संग्राम की बात है, शिशुपाल की तो बात ही क्या आपके समक्ष देवराज इन्द्र भी क्षणभर भी नहीं टिक सकते और इसके अतिरिक्त सुकृती पुरुष सिद्धि और असिद्धि की चिन्ता न करते हुये यथोचित कर्तव्यता को करते हैं। उस विप्रर्षभ के इन उत्साह-प्रद वचनों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, हे द्विजवर! अब आप विश्राम करें कल मेरे ही साथ विदर्भ देश चलें। श्रीकृष्ण भगवान् उस विप्रर्षभ का विधिवत् आतिथ्य करते हैं और यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

त्रयोदश सर्ग-

इस सर्ग में कवि मनोरम प्रभाव का वर्णन प्रस्तुत करता है। कवि प्रारम्भ में

प्रभाव वर्णन की स्वाभाविक भूमिका को प्रस्तुत कर प्रातःकालीन नैसर्गिक एवं शास्त्रीय वर्णनों को रखकर तत्कालीन मधुर सौन्दर्य को निरूपण करता है। मध्य-मध्य में श्रृंगार रस के मनोरम पुट को भी लगाता जाता है। कवि परिवर्तनशील प्रकृति के माध्यम से यह बतलाता कि संसार में कोई भी वस्तु नष्ट नहीं होती है परन्तु रूपान्तर को लोक में विनाश कहा जाता है। कवि का यह वर्णन सांख्यदर्शन के सत्कार्यावाद से प्रभावित है। कवि का प्रातःकालीन स्वाभाविक सौन्दर्य हठात् पाठक को आकृष्ट कर लेता है। कवि का शास्त्रीय वर्णन भी सर्वथा अस्वाभाविक नहीं है। सर्ग के अन्त में कवि उदित होते हुये सूर्य का मनोरम वर्णन प्रस्तुत करता है और कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

चतुर्दश सर्गः-

प्रातःकाल होते ही भगवान् श्रीकृष्ण निद्रा का परित्याग कर बिस्तर से उठ खड़े होते हैं। प्रातःकालीन स्नानादि कृत्यों को समाप्त करके शुभ्र चन्दन के द्वारा तिलक लगाकर, तीन अर्घ्यों के द्वारा भगवान् सूर्य को प्रसन्न कर, गायत्री का जप कर, ब्रह्मसन्ध्या की समाप्ति पर अगुरु की धूप से सुगन्वित भगवान् शिव के विशाल मन्दिर में प्रवेश करते हैं। वहाँ सर्वप्रथम स्वच्छ अल का आचमन कर रुचिर सुवर्णमय आसन पर बैठकर प्राणायाम करते हैं। इसके अनन्तर शुद्ध जल से शिवलिंग को स्नान कराकर मधु, घृत, दधि, शर्करा मिश्रित अनेक तीर्थों से लाये गये शीतल जल के द्वारा मन्त्रोच्चारणपूर्वक भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण विधिपूर्वक भगवान् शिव का सर्वांगपूर्ण पूजन करते हैं। इसके पश्चात दिव्य स्तोत्र के द्वारा मदनमथन आशुतोष भगवान् शिव की भावभीनी स्तुति करते हैं। इसके अनन्तर भगवान् शिव की प्रदक्षिणा करके भगवान् श्रीकृष्ण यज्ञ कार्य सम्पन्न करते हैं। तत्पश्चात्

ब्राह्मणपूजन, दान, गुरुपूजन करने के पश्चात् उन विप्रर्षभ के समीप आते हैं। मधुर सम्भाषण, मधुरासन एवं ताम्बूल दानादि के द्वारा उसका स्वागत-सत्कार करते हैं। इस प्रकार प्रतिदिवस विध्य कार्यों को सम्पन्न कर उत्तर दिशा की ओर शीघ्र ही प्रस्थान करने का निश्चय कर अपने प्रधान सारथी को श्रेष्ठ रथ लाने के लिये आदेश देते हैं। यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

पञ्चदश सर्गः-

इस सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रथ का मनोहारि वर्णन प्रस्तुत किया है। वह उस रथ में जुते हुये अश्वों की तुलना उच्च श्रवा नामक अश्व से करता है। भगवान् श्रीकृष्ण तपस्वियों का समादर कर और याचकों को सन्तुष्ट कर रथ की प्रदक्षिणा कर पहले ब्राह्मण को रथ पर चढ़ाते हैं। इसके पश्चात् स्वयं स्वस्तिवाचन पूर्वक रथ पर चढ़कर शंख बजाकर कुण्डिनपुरी को चलने के लिए सारथी को आदेश देते हैं। वेगवान् रथ के द्वारा वे बड़ी तेजी से प्रस्थान करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अकेले ही चले जाने पर बलराम मन में चिन्ता करते है ओर वे तत्काल ही उग्रसेन की सभा की ओर प्रस्थान करते हैं। यहाँ कवि उग्रसेन की सभा का चारुतम चित्रण करता है। कवि उग्रसेन की सभा के साथ ही साथ बलराम का भी वर्णन करता है। उग्रसेन की सभा में पहुँचकर हली उनसे कहना प्रारम्भ करते हैं कि हे महाराज! अत्यन्त ही अहित उपस्थित हो गया है। कुण्ड्नेन्द्र की सुन्दरीसुता तीनों लोकों में विश्रुत रमणियों में शिरोमणि है, जिसे कुण्डिनेन्द्र कृष्ण को देना चाहते हैं, परन्तु उनका पुत्र रुक्मि उसे चेदिय को देने के लिये बुलाये हुये है, परन्तु वह कन्या कृष्ण को ही चाह रही है। अतः उसने कृष्ण के समीप दूत को भेजा है। उसके सन्देश को सुनकर अकेले ही भगवान् कृष्ण कुण्डिनपुर को गए हुए हैं। बलभद्र की इस प्रकार की उक्ति को सुनकर

उग्रसेन तत्काल ही भगवान् श्रीकृष्ण के सहायतार्थ अपनी विशाल वाहिनी को भेजने का प्रस्ताव करते हैं जिसमें अत्यन्त ही बलशाली योद्धा लोग हैं। यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

षोडश सर्गः-

इस सर्ग के प्रारम्भ में भगवान् श्रीकृष्ण की यात्रा का वर्णन है। भगवान् श्रीकृष्ण के रथरव से शक्तिमानस विहंग एक वृक्ष को छोड़कर दूसरे वृक्ष पर बैठने लगते हैं। कवि श्रीकृष्ण यात्रा के सन्दर्भ में विविध प्राकृतिक दृश्यों को भी प्रस्तुत करता है। कवि प्राकृतिक दृश्यों के सन्दर्भ में वन और उसमें रहने वाले जीव जन्तुओं को भी वर्णन कर देता है। मार्ग में स्थित रैवतक नामक अचल का भी विधिवत् वर्णन किया है। कवि के इन वर्णनों में सर्वत्र श्रृंगार का मधुर पुट प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण सरोवर के तट पर विश्राम कर सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म करते हैं। इसी बीच बलसमेत बलराम वहाँ पहुँच जाते हैं। इसके पश्चात् सेना के सहित दोनों लोग कुण्डिनपुर को प्रस्थान करते हैं। कुण्डिनपुर को प्राप्त कर श्रीकृष्ण भीष्मक का समागम होता है। भीष्मक अत्यन्त स्नेह के साथ श्रीकृष्ण बलराम का आलिंगन कर आनन्द का अनुभव करते हैं और उनसे कुशलक्षेम पूछते हैं। भीष्मक के कथन को वुनकर प्रसन्नचित्त भगवान श्रीकृष्ण उन्हें उचित उत्तर देते हैं और यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

सप्तदश सर्गः-

श्रीकृष्ण से आज्ञा लेकर वह विप्र पैदल ही रुक्मिणीभवन की ओर प्रस्थान करता है। प्रसन्नचित्त विप्र रुक्मिणीभवन को पाकर प्रतिहारी के द्वारा रुक्मिणी को समाचार भेजता है। रुक्मिणी तत्काल ही उस विप्र को अन्तःपुर में बुला लेती है। उसके

प्रफुल्लित मुखकमल को देखकर रुक्मिणी कार्य सिद्धि का अनुमान कर लेती है। अपने प्रियतम कृष्ण के आगमन वृत्तान्त को सुनकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है। उस समय वह अपने अधीन नहीं रहती है। रुक्मिणी की विचित्र दशा को देखकर वह विप्र शीघ्र ही अपना वक्तव्य प्रारम्भ करता है। सर्वप्रथम वह रुक्मिणी को समाश्वस्त करता है, तत्पश्चात् शुभाशसन प्रारम्भ करता है। उसकी समस्त वाणी को रुक्मिणी बृहत्कथा के समान सादर सुनती है। विप्रवर विस्तारपूर्वक समस्त वृत्तान्त को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है और रुक्मिणी को समस्त नारियों में श्रेष्ठ बतलाता है। द्विजोक्तिसुधारसपान से आकण्ठतृप्त रुक्मिणी सद्य ही कहना प्रारम्भ करती है। हे द्विपजुंपगव ! मैं तुम्हारी इस अनुग्रह से सर्वथा धन्य हूँ। जिस आपके अनुग्रह से मैं अपने मनोरथ के समीप पहुँच रही हूँ वह अनेक प्रकार से उस विप्रवर का स्तवन करती हुई कृतज्ञता प्रकाशित करती है। आपने यह मेरा कार्यसम्पन्न कर दिया है शेषकार्य भी आपके आशीर्वचन से सम्पन्न होगा। इस प्रकार विविध विषयों को प्रस्तुत करती हुई कुमारी रुक्मिणी अपने प्रियतम के अनुपमेय प्रभाव को स्मरण कर चुप हो जाती हैं वह विप्रवर उसें बार-बार सान्त्वना देता है। यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

अष्टादश सर्गः-

भगवान् श्रीकृष्ण को कुण्डिनपुर में आया हुआ सुनकर पुरवासियों के हृदय उसी प्रकार आनन्दित हुये जिस प्रकार दीनजन अलभ्य वैभव को प्राप्त कर प्रहर्षित होता है। उत्कण्ठित नगर निवासी श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये बड़ी तेजी से अपने घरों से निकल पड़ते हैं। पुरवासियों के प्रस्थान को कवि ने अपनी अनुपम कल्पना के द्वारा मनोरम रूप में प्रस्तुत किया है। तेजी से चलते हुये पुरवासी लोग भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष पहुँचते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष पहुँचकर वे अनेक प्रकार से उनकी स्तुति

करते हैं। स्तुति के प्रसंग में पुरवासी लोग भगवान् श्रीकृष्ण की अलौकिकता का विधिवत् वर्णन करते हैं। पुरवासियों की स्तुति को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें मधुर उक्ति के द्वारा सन्तुष्ट करते हैं। तत्पश्चात् वे नगरदर्शन के लिये चल देते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के नगर में प्रवेश करते की वहाँ की रमणियाँ अपने कामकाज को छोड़कर उन्हें देखने के लिये दौड़ पड़ती है। कोई परिधान विधि को ही भूल जाती है, कोई वस्त्रों को दृढ़ता से नहीं बाँधती है, शीघ्रता में कहीं के आभूषण कहीं पहन लेती हैं। इस प्रकार वहाँ की स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर उनके सौन्दर्य से विमुग्ध हो जाती हैं और अपनी अनुरूपता न मानकर दुःख करती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण नगर का अवलोकन कर वहाँ से लौट पड़ते हैं और यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

ऊनविंश सर्गः-

भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन, राजा के द्वारा उनके समादर और पुरवासियों की उनके प्रति भक्ति को देखकर युवराज रुक्मि अत्यन्त खिन्न हो उठता है। श्रीकृष्ण के आगमन से उस अत्यधिक अमर्ष होता है और उस अमर्ष से सन्तप्त हो उटता है। अपने चाहे गये कार्य का अत्याहित देखकर वह अत्यन्त ही विकृत हो उठता है। विकृत रुक्मि अपने पिता को उलाहना देने अधिक्षिप्त करने और नियन्त्रित करने के लिये उत्सुक होकर वह मानो पृथ्वी को पीड़ित करता हुआ सा पैदल चल देता है। शीघ्र ही मार्ग को पारकर वह अपने पिता की सभा में पहुँचता है। वह दूर से ही अपनी भौंह चढ़ाकर पिताजी को देखकर सदाचार का अनुसरण कर उन्हें प्रणाम करता है। विघ्नभूत आये हुये अपने पुत्र को देखकर राजा अन्दर से आकुलित हो उठते हैं। पुत्र के वैपरीत्य के रहते हुये भी उसके मंगल के इच्छुक राजा ने उसे आशीर्वाद देकर चुप रहना ही उचित समझा परन्तु रुक्मि ने राजा से गम्भीर बचन कहे कि आपने यह जनसंहारकारक

क्या कार्य प्रारम्भ कर दिया है ? अपनी कन्या के विवाह के समय आपने यह क्या अमंगलकारी कार्य प्रारम्भ कर दिया है ? यह आपकी दुर्बुद्धि ही है कि आपने कंसादि को मारने वाले कृष्ण को बुला दिया है। वह दुष्टात्मा निश्चय ही इस शुभ कार्य में भी विघ्न करेगा। हम लोग भी इस विषय मे सावधान हैं और उसके दर्प को निश्चित ही नष्ट कर देंगे। यदि कृष्ण अपनी कुशल चाहे तो यहाँ से शीघ्र ही अपने देश को वापस लौट जाये। वह काले मुख वाला कृष्ण किसी भी प्रकार रुक्मिणी को नहीं प्राप्त कर सकता है। भला कहीं बन्दर व्याघ्री से व्याह रचा सकते हैं ? कहाँ अपने प्रताप से देवताओं को भी आतंकित कर देने वाले शिशुपाल और कहाँ भोजराज का सेवक कृष्ण? आपने कृष्ण को बुलाकर सभी की शान्ति भंग करने की स्थिति पैदा कर दी है। जब मैंने यह निश्चय कर लिया था कि रुक्मिणी का विवाह चेदिराज के साथ होगा तो फिर अपने ऐसा क्यों किया? इसके पश्चात् वह मन्त्री को भी अधिक्षिप्त करता है कि यह मन्त्री ब्राह्मण, बूढ़ा एवं कायर है। आपका इसके प्रति स्नेह है इसीलिये इसका वध नहीं कर रहा हूँ। रुक्मि के इस अपमान से सने हुये वचनों को सुनकर भीष्मक कहना प्रारम्भ करते हैं कि हे वत्स! चूँकि तुम बालक हो इसलिये तुम्हारे बचनों को अन्यथा नहीं ले रहा हूँ। वृद्ध प्रधानमन्त्री की इस प्रकार से अवमानना क्या उचित है? अनियन्त्रित वाक्कर्म पुरुष संसार में सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है। विषयासक्त पुरुष बुद्धिहीन होकर नष्ट हो जाता है। विवाह के विषय में रागद्वेष को छोड़कर पुत्री रुक्मिणी को उचित पुरुष को प्रदान करना चाहिये। न जाने किसने किसलिये भगवान् श्रीकृष्ण को बुलाया? वस्तुतः मैंने उन्हें नहीं बुलाया है। वैसे मेरी समझ में भगवान् श्रीकृष्ण के सदृश पुरुषरत्न तीनों लोकों में नहीं है इसलिये नवीन इन्दु की निष्कलंक कला के सदृश उन्हें ही अपनी पुत्री को देना चाह रहा हूँ। उन्हें प्राप्तकर कन्या रुक्मिणी द्वितीय चन्द्रलेखा के सदृश लोगों के द्वारा सदैव वन्दनीय होगी। तुम मेरे पुत्र हो इसलिये वृद्धावस्था की मेरी इस

अन्तिम प्रार्थना को पूर्ण करो। जो होनहार है उसका मुझे शोक नहीं है परन्तु मैं तो केवल तुम्हारे ही कल्याण की कामना करता हुँ। राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उनके कथन को न सुनकर रुक्मि वहाँ से शीघ्र ही चेदिराज शिशुपाल की ओर प्रस्थान करता है। शिशुपाल आये हुये रुक्मि को बिठाकर गम्भीरता को धारण करता है और रुक्मि से इस प्रकार कहता है, तुम ठीक ही समय में आ गये हो, संसार में वही मित्र है जो समय पर उपस्थित हो। तुम्हारी मेरे प्रति सर्वाधिक आस्था है क्योंकि तुम्हीं अपनी बहिन को मुझे देना चाहते हो। तुम्हारी इसी इच्छा के द्वारा आहूत मैं यहाँ आया हूँ। परन्तु मेरा जन्म का बैरी यह कृष्ण कहाँ से आ गया? मुझे बुला करके तुम्हारे द्वारा यह नहीं बुलाया गया है, मैं ऐसा अनुमान करता हूँ। यह दुष्टात्मा लुटेरे स्वभाव का है। यह साधारण शत्रु नहीं है। इसलिये आप सभी को सावधान रहना चाहिये। मैं अपमान को न सहनकर प्रणान्तता को भी स्वीकार करना उचित समझता हूँ यदि आप लोगों को रुचिकर लगे तो हमारी सहायता करें। चेदिराज शिशुपाल के इस प्रकार के कथन को सुनकर रुक्मि सान्त्वनात्मक वचन बोलता है। वह कहता है तुम वीरों के अग्रणी हो अतएव हताश की तरह क्यों बोल रहे हो ? भला हप्त मृगेन्द्र के कौन दाँत गिन सकता है ? आपके अपमान करने का किसमें साहस है ? किसके मस्तक पर काल खेल रहा है ? जिसको तुम युद्ध में तिनके के समान समझते हो वह तुम जैसे प्रभञ्जन के प्राप्त कर निश्चय ही तृण ही हो जायेगा। तुम यहाँ ही बैठे-बैठे अपने सेनानियों का पराक्रम देखना। इनके समक्ष श्रीकृष्ण क्या टिक सकता है ? अथवा मुझे आदेश दो मैं उसे बाँधकर आपके समक्ष लायें अथवा उसका वध कर दें। मैं आपके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता जिस कार्य के लिये यहाँ बुलाया है वह अवश्य ही होगा। इन वीरों के समूह को देखकर दुष्ट अथवा शिष्ट कृष्ण साहस नहीं कर सकता है। मंगल के समय सहसा युद्ध छेड़ना उचित नहीं है। कृष्ण हम लोगों को कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। हे पुरुषोत्तम

शिशुपाल ! कल बहिन रुक्मिणी नगर से बाहर देवी का पूजन करने जायेगी उस समय हम लोगों को विशेष सावधान रहना चाहिये। इस प्रकार सभी सभासदों के द्वारा समाहत वचन रुक्मि वहाँ से अपने भवन की ओर प्रस्थान करता है और यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

विंश सर्गः-

इसके अनन्तर प्रातःकाल ही विवाह विधि के अंगभूत वंशक्रम से चले आये गौरीपूजन के अनुरोध से कमनीय आकृति वाली कुमारी को परिवार की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ स्नानादि कराती हैं। कवि ने इसी सन्दर्भ में रूक्मिणी की साजसज्जा का निरूपण करते हुये उसके अप्रतिम सौन्दर्य का मनोहर चित्रण किया है। अनेक प्रकार के अलंकरणों से विभूषित रुक्मिणी परिवार के वृद्धजनों एवं गुरुजनों को प्रणाम करती है तदन्तर पूज्य पिता के स्नेहपूर्ण निर्देश से सुवर्ण निर्मित शिविका में उसी प्रकार प्रविष्ट होती है, जिस प्रकार मञ्जुल इन्दुकला सुमेरु की गुफा में प्रविष्ट होती है। अनेक सखियों से घिरी हुई रूक्मिणी पार्वतीपूजन के लिये प्रस्थान करती है। उसके चारों ओर रक्षार्थ विशाल सेना प्रस्थान करती है। गिरिजा मन्दिरकी ओर प्रस्थान करती हुई रुक्मिणी को नर-नारियाँ अत्यधिक उत्सुक होकर देखती हैं और उसके सौन्दर्य के समक्ष अपने को तृणवत् समझती हैं और वे उसे त्रिलोकीतिलकायमान कहती हैं। इस प्रकार मार्ग का अतिक्रमण हरिदर्शन के लिये उत्कण्ठित रुक्मिणी अचलराजपुत्री पार्वती के मन्दिर के समीप पहुँच जाती है। चारों ओर ध्यान पूर्वक देखते हुये भी रुक्मिणी अपने प्रियतम कृष्ण को नहीं देखती है। तो उस समय वह भगवती पार्वती का ध्यान करती हुई उनके मन्दिर में प्रवेश कर दर्शन करती है। मन्दिर में पहुँचकर रुक्मिणी भगवती पार्वती को प्रणाम करती है। इसके अनन्तर विनम्र होकर भगवती पार्वती की विधिवत् पूजा करके बचनब्याज से

मनोगत भावप्रसून को समर्पित करती है। वह अनेक प्रकार से जगज्जननी भगवती पार्वती की स्तुति करती है। वह कहती है कि आपके असाधारण माहात्म्य का भला कौन बखान कर सकता है ? रुक्मिणी भगवती पार्वती से निवेदन करती है कि मैं अपने मनोरथ को प्राप्त करने के लिये यहाँ आई हूँ। अतएव अपने मस्तक के द्वारा आपके चरणारविन्द की वन्दना कर ही हूँ। रुक्मिणी की स्तुति से प्रसन्न पार्वती मानो उसे उसके प्रियतम की प्राप्ति का वरदान दे देती हैं अतः हर्षाश्रुपुलकिताक्षी रुक्मिणी पुनः पार्वती को प्रणाम करती है। इसके अनन्तर वह मन्दिर से निकलकर बाहर आती हैं देवी के अनुग्रह से और अधिक विश्वस्त होकर वह अपने प्रियतम को देखने की इच्छा से चारों ओर दृष्टि डालती है। भगवान् श्रीकृष्ण को समीप ही देखकर वह अत्यन्त ही पुलकित हो उठती है। भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से वह भावविभोर हो उठती है और उस भाव विह्लता से विमुग्ध मानस अपने को जैसे-तैसे सुस्थित करती है। एक ओर वह अकेले अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को देखती है और दूसरी ओर शत्रुसेना को देखती है। ऐसी स्थिति में वह अपने प्रियतम के प्रयास के परिहरण के लिये दर्प से अपने सामर्थ्य को समझकर अवारणीयच कटाक्ष निक्षेप रूपी विमोहन अस्त्र का प्रयोग करती है जिससे शत्रुसेना उसी सौन्दर्यसुधा को पीकर मानो चित्रलिखित सी स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसके नेत्रों के द्वारा आकृष्ट भगवान् श्रीकृष्ण उसके लिये अत्यन्त ही उत्सुक हो जाते हैं अैर शीघ्र ही रथ के द्वारा बड़ी तेजी से वे उसके समीप पहुँच जाते हैं और वे अपने कमलसदृश कोमल करों से रुक्मिणी को पकड़कर अपने रथ पर बिठा लेते हैं। उनके द्वारावती की ओर प्रस्थान करते हुये समीरवेग वाले रथ को शत्रु की सेना रोकने में समर्थ न हो सकी। इस प्रकार कुमारी रुक्मिणी का अपहरण कर भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही अपनी पुरी को प्रस्थान करते हैं और शत्रुजनों के परिघर्षण के लिये बलराम वहीं रुके रहते हैं। यहीं कवि परिचय के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

एकविंश सर्गः-

रुक्मिणी को मोहिनी रूपराशि से विमुग्ध सेना जब बोध को प्राप्त होती है तो वहाँ रुक्मिणी को न देखकर कर्तव्यच्युति के भय से और अधिक मूर्च्छित हो जाती है। इसके अनन्तर सेना तेजी से श्रीकृष्ण के मार्ग की ओर झपटती है जिसे हलायुध बलराम बीच में ही संरुद्ध कर देते हैं। ऐसी स्थिति को देखकर सेना के द्वारा चेदिराज शिशुपाल को समाचार भेजा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्पष्ट अपराध को सुनकर ओठों को फड़फड़ाते हुये क्रुद्ध चेदिराज शिशुपाल अपने मित्रों के सहित सम्पूर्ण सेना के साथ बलराम पर आक्रमण कर देते हैं। बलराम और शिशुपाल में भयंकर युद्ध होता है। सेनाओं की बाणवर्षा के द्वारा आकाश, पृथ्वी एवं दिशाएँ दिखलाई नहीं पड़ती हैं। यहाँ कवि ने अत्यन्त ही विस्तार के साथ अनेक प्रकार के युद्ध कौशल का चित्रण किया है। इस समाचार को सुनकर क्रुद्ध रुक्मि अपनी विशाल सेना को युद्ध के लिए प्रेरित करता है। दृप्त रुक्मि पिता के समीप जाकर उन्हें खरी-खोटी सुनाता हैं वह कहता है कि आपने स्वयं ही अपनी पुत्री का चोर के द्वारा अपहरण करवाया है, क्या यह स्पष्ट अपमान नहीं है ? इसलिये अब मैं प्रतिकार के लिये जा रहा हूँ। यदि मैं उस शत्रु का प्रमथन कर आपके चरणकमलों में समर्पित नहीं करता हूँ तो दुबारा नगर में प्रवेश नहीं करूँगा। संग्राम और विजय और पराजय तो ध्रुव है परन्तु इस अपमान को कौन सहन करे ? प्रत्येक वस्तु मान के लिये होती है मान के लिये मुझे प्राणों का भी मोह नहीं है। इसे अनन्तर वह विशाल सेना से समनुगत रुक्मि भगवान् श्रीकृष्ण का पीछा करता है। इधर भगवान् श्रीकृष्ण विशाल सेना को आता हुआ देखकर अपने धनुष को सँभाल लेते हैं। रुक्मि भगवान् कृष्ण को ललकारते हुये कहता है- स्वसा का अपहारक तू वीर है? झटपट भागने में तू अत्यन्त ही शूर है अब मैं तुझे देखता हूँ। मैं तेरी सेवा के लिये यहाँ आया हूँ। अब तू मेरी पूजा को स्वीकार कर। आज ब्रज में नवनीत को छोड़कर तूने

मेरी इस बहिन का अपहरण किया है, आज तुझे चोरी का फल मिलेगा। चाहे तू वीर हो या कायर हो, आज मेरे हाथों से नहीं बच सकता। रुक्मि के इन आक्षेपपूर्ण वचनों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने रथ को उसी ओर करके गम्भीर, शान्त और धीर वाणी में बोलते हैं- तू वीर है, अपने ही मुख से अपनी विवेचना कर रहा है। यह तेरा व्यवहार वस्तुतः उपहासास्पद है। इस तन्वी कन्या के पिता इसे मुझे देना चाहते थे तब तू इस किसी दूसरे को क्यों देना चाह रहा है ? इस समस्त वृत्तान्त को सुनकर ही मैंने इसका अपहरण किया है। किसी पर आक्षेप करना उचित नहीं है। योद्धाओं का आलाप प्रलापों से नहीं होता है अपितु आयुधों के द्वारा होता है। यदि तू अपनी बहिन को छुड़ाना चाहता है तो विक्रमण रूप व्यवहार कर। मैं तुम्हारी इस पूरी सेना के समक्ष अकेला खड़ा हूँ। शंकरहित होकर अस्त्रों का प्रहार करो। भगवान् श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर क्रुद्ध रुक्मि अपने धनुष के द्वारा श्रीकृष्ण पर वाणों की वर्षा करने लगता है। रुक्मि की सेना भी एक साथ श्रीकृष्ण पर टूट पड़ती है। भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने कार्मुक के द्वारा वाणों की वर्षा करते हुए दिग्मण्डल को आपूरित कर देते हैं। रुक्मि और श्रीकृष्ण में भयंकर युद्ध होता है। भयंकर युद्ध करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मि को बालों से कसकर पकड़कर जैसे ही उसके सिर को काटना चाहते हैं, उसी समय रुक्मिणी उनसे निवेदन करती है कि यह मेरे पिता का अत्यन्त प्रिय और ज्येष्ठ पुत्र है। आपका भी सम्बन्धी है इसलिये यह बध्य नहीं है। यदि आप यह भी नहीं मानते है तो विमर्श करें, मैं आप में आसक्त हूँ यदि इसका वध हो जाता है तो वह मेरे लिये कलंक है। अतः कृपया मेरे इस कलंक का सम्माजन करें। प्रियतमा की इस उक्ति को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्कराते हुये उसे बाँधकर रथ के पीछे बैठा देते हैं। इसी बीच बलराम भी वहाँ आ जाते हैं। और वे रुक्मि को छुड़वा देते हैं। बलराम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसे अपना निकटतम का सम्बन्धी बतलाते हैं। सामवचनों के द्वारा बहुत प्रकार से बलराम

सरलतया उसे समझाकर अपने वश में कर लेते हैं और रथसेवकों के सहित उसे विदा करते हैं और वे कन्या रुक्मिणी को भी सान्त्वना देते हैं। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणी से अनेक प्रकार का वार्तालाप करते हैं और इस प्रकार वे द्वारिकापुरी पहुँच जाते हैं। वहाँ उनका अत्यधिक स्वागत किया जाता है। पूज्य माता अन्य रानियों के साथ पहुँचकर श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के मंगल कार्य को सम्पन्न करती हैं। यहीं कवि वर्णन के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है।

समीक्षाः-

इस विवेच्य महाकाव्य के काव्य शास्त्री विविध अंगों का अनुसन्धानात्मक अनुशीलन आगे के अध्यायों में विधिवत् किया जाना है। अतः यहाँ इसका संक्षिप्त परिचय मात्र ही दिया गया है। वस्तुतः यह महाकाव्य प्रसाद गुणमयी पौराणिक कथा वस्तु की प्रवीण प्रौढ़ प्रस्तुति है। अपनी मौलिक सरस वर्णना से हृदयावर्णक होकर संस्कृत के अर्वाचीन महाकाव्यों में मूर्धाभिषिक्त माना गया है।

पंचम
अध्याय

अध्याय- पंचम

रुक्मिणी महाकाव्य का साहित्यिक दृष्टि में गवेषणात्मक अनुशीलन

क. साहित्यिक अनुशीलन- संस्कृत साहित्य की यह अन्यतम विशेषता है कि कवि कथानक के मूल भाग का ग्रहण भारत के आकर ग्रन्थों महाभारत, रामायण अथवा पुराणों से करता है। उस कथानक के सभी पात्रों की पूर्व स्थापित मर्यादा के अनुकूल अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करते हुए सहृदय हृदयावार्जक बनाकर भावुकों के सम्मुख उपस्थित करता है। यह शैली इतनी दृढ़ता से स्वीकृत हुई कि कवियों के निमित्त बनने वाले लक्षण गन्थों में इन तथ्यों का भी समावेश किया गया। वस्तुः अत्यन्त प्राचीन भारत में साहित्य सर्जना की विधाओं का पूर्ण विस्तार था एवं उसके एक-एक पक्ष के पृथक-पृथक विशेषज्ञ थे। उनका विचार प्रवाह चलता था। राजशेखर (१०वीं शती) ने काव्य मीमांसा में ऐसे विशेषज्ञों एवं साहित्यिक समालोचना के सिद्धान्तों का परिचय दिया है।

"तत्र कविरहस्यं सहस्त्राक्षः समाामनासीत्, औतिक मुक्ति गर्भः रीति निर्णयं सुवर्णनामः अनुप्रासिकं प्रचेतायनः यमकानिचित्रं चित्रांगदः शब्दश्लेषं शेषः, वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायनः अतिशयं पारशरः, अर्थश्लेषमुथ्यः, उभयालंकारिकं कुबेरः, वैनोदिक कामदेवः रूपकनिरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः, दोषाधिकरणं धिषणः, गुर्णेपादानिकमुपमन्युः, औपनिषदिकं कुचिभारः इति। (का०मी० १/१)

उपरि उद्धरण से स्पष्ट है कि काव्य के सभी अंगो की सम्यक् समीक्षा के स्थापित सिद्धान्तों के अनुसार ही किसी महाकाव्य के साहित्यिक पक्ष का अनुशीलन करना उचित होता है। इस दृष्टि से महाकाव्य के साहित्यिक अनुशीलन के प्रस्तुत प्रकरण को अधोलिखित अविभागों में विभाजित करके देखा है।

१- **विशिष्ट** वर्णनः- इसके अन्तर्गत महाकाव्यगत विशिष्ट काव्यात्मक एवं साहित्यिक महत्व के स्थल, प्रकृति एवं व्यक्तित्व वर्णनों का अनुशीलन अभिप्रेत है।

२- **काव्य कलापक्ष** का **अनुशीलन** :- इसके अन्तर्गत छन्द, रीति, गुण, अलंकार, प्रकृति चित्रण आदि पात्रों के साहित्यिक विवरण पर अवधान केन्द्रित होगा।

३- **भाषा प्रयोग कौशलः**- साहित्य को सभी अंगों का उत्कर्ष उसकी भाषा प्रयोग चातुरी से ही हो पाता है। अतः महाकाव्य की भाषा के वैशिष्ट्य् के प्रदर्शन परमावश्यक है।

१- रूक्मिणीहरण महाकाव्य के विशिष्ट वर्णनः-

स्थल वर्णन :- कवि ने सर्ग १ व ६ में कुण्डिनपुर का, सर्ग १० में द्वारकापुरी, सेतु एवं श्रीकृष्ण के भवन का, सर्ग १६ में वन एवं पर्वतों का वर्णन करते हुए अपनी उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। ये सभी वर्णन शैली की दृष्टि से माघ भारवि, श्री हर्ष, प्रभृति महाकाव्यों की लेखनी का स्मरण कराते हैं।

कुण्डिनपुर वर्णन :- प्रथम सर्ग में अत्यन्त समास शैली में कवि ने कुण्डिनपुर को स्वर्ग से उपमित किया है। नगर रचना को देखकर कवि ने उत्प्रेक्षा की, कि दिति के पुत्रों से बचने के लिए स्वर्ग ही धरती पर आ गया है।

"प्रतितारार्यषुर्दितेः सुतान् सुरलोकः पृथ्वीभिवाऽगमत्।" (रु०ह० १/१)

नवम सर्ग में शिशुपाल की बारात का कुण्डिनपुर पहुँचना वर्ण्य था अन्तः पुर की सज्जा के विषय वर्णन में कवि ने सात श्लोकों की रचना की है। (६-४-११)

रुक्मी ने सम्पूर्ण नगर को अगर गुग्गुल आदि ग्रन्थ द्रव्यों से सुवासित करा दिया था। सभी जलाशय भी सुरभित थे। कुण्डिनपुर के जलाशय वर्णन का एक चमत्कारिक छन्द इस प्रकार है--

"भूमेर्हृदः किमुदगात्सकलः सुगन्धो।
भिन्नाद्रियाऽथ रुधिराणि जलीबभूवुः।।
भूपाऽगमादुत जलान्यमलानि यत्र।
नानाविधासुरभितानि जलाऽशयानाम।। (रु०ह० ६/७)

शिशुपाल के आगमन से जलाशय विभिन्न प्रकार के सुगन्धों से पूरित किया गया है। किन्तु ऐसी प्रतीत होता है कि नगर को सुगन्धित करने के लिए धरती के हृदय का सार गन्ध ले लिया गया है। अतः भूमि का रुधिर ही जलरूप में परिणित हो गया है।

द्वारका पुरी वर्णन :- ब्राह्मण के द्वारा संदेशवहन के प्रकरण में द्वारका वर्णन प्रासंगिक है। दशम सर्ग में श्लोक ७५ से १२४ तक द्वारका वर्णन में अतीव ललित सूक्ष्म एवं मर्मस्पर्शी है। द्वारका की रक्षा के लिए समुद्र ही परिखा बन गया था। [१३५]

द्वारका के राजपथ के दोनों पार्श्वों पर विभिन्न पुष्पों एवं फलों से सम्पन्न द्रुमावली थी। पैदल चलने वालों के लिए विभिन्न प्रस्तरों का सुरम्य कुटिट्म बना हुआ था। [१३६] उन पुष्पों पर भ्रमरावलियों के कारण निष्फुट पुष्पराशि पुर को विभिन्न वर्णवाला बनाता था ऐसा प्रतीत होता है कि द्वारका विभिन्न वर्ण वाले रसों का स्पष्ट प्रतीक बन गई थी। [१३७] द्वारका में वेदोच्चारण तर्पण शंख धनुः प्रत्यंचा के निनाद सर्वत्र व्याप्त रहते थे। उन घोषों में मेघों की गर्जना मृदंग की भांति मन्द सुनाई देती थी। [१३८]

१३५- स्वयं च यस्याः परिखी बभूत यादीगणैराकुलितः पथोधिः। (रु० ह० १०/७६)

१३६- रु० ह० १०/८०

१३७- रु० ह० १०/८१ यहाँ विभिन्न वर्णः रसानां में श्लोष है।

१३८- रु० ह० १०/८४

अर्थात द्वारका में शस्त्र एवं शास्त्र का सतत अभ्यास होता था। सुन्दरियों के सौंदर्य एवं ऐश्वर्य दोनों का वर्णन श्लेष के माध्यम से कवि ने किया है। (१३९)

गुणानुगायोगविशेषभाजो, निपत्यमुक्तावलोयऽपि यत्र।

आश्लिब्टकण्ठाः कलभाषिणीनां, स्तेनेषु चेरुः कनकाचलेषु।।

सारी पुरी में सौन्दर्य एवं आनन्द का ही चर्तुदिक प्रसार था इस कथन को कवि ने हृदयाह्लादक उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। (१४०)

पुरी वर्णन में अंगनाओं के श्रृंगारिक वर्णनों को प्रमुखता दी गई है। दो उदाहरण दृष्टव्य है-

१- येषु प्रहाणाय रतिक्लमानां, स्वैरं स्त्रियो मज्जनमाचरन्त्यः।

ललामलीलालुलितानि चक्रु, र्जलानि किञ्जल्कवि भूषितानि।। (रु०ह० १०/१०४)

२- पपुः सतृष्णं नुनुदुः स्तनाभ्यामाधाय गण्डस्थलमालिलिंगुः।

आवर्तयन्ति स्म निशाऽवितृप्ताः, स्फुटं तरुण्यः पुरुषायितानि।। (वही १०/१०५)

इस नगर के पुण्डरीक तालाब स्फटिक मणि के बने थे उनमें अनन्त प्रतिबिम्बों से प्रस्फुरित चन्द्रमा सरोज की भाँति प्रतीत होता था एवं उसका कलंक भ्रमर के समान था। अन्ततः कवि कहता है कि श्रीकृष्ण का भवन--

मानं श्रुतीनामिव नाऽपरेषां, श्रुतिर्विरोधे न च मानमक्ष्णोः।

सँभावनाऽभूदथ न त्रुटीनां, वृथा च यत्र त्रुटयोऽपि नाऽसन्।।

(रु० ह० १०/१२४)

१३९- "गुणानुगाः", योगविशेषभाजाः, "मुक्तावलयः", "माश्लिष्टकण्ठाः", "कनकाचलेषु" पद श्लिष्ट है।

१४०- द्रु० १०/८७-९८

वनपर्वतादि वर्णनः- महाकाव्य की मर्यादा का निर्वाह करते हुए कवि ने १६वें सर्ग में प्रसंगतः वन एवं खैतक पर्वत का सुरम्य वर्णन किया है।

इस सर्ग के तीसरे श्लोक से ही कवि ने मार्ग की वनच्छटा का वर्णन आरम्भ कर दिया है। कहीं सहकारिमञ्जरी का रसास्वादन करने वाली कोयलें प्रसन्नता से कूंजन कर रहीं थीं। [१४१] कहीं श्रीकृष्ण को मेघ एवं उनके कार्मुक को विद्युत मानकर मयूर भ्रमवश नृत्य करने लगे। [१४२] कहीं सूर्य की किरणों से छिपे चन्द्र के कारण उदास चकोर सहसा श्रीकृष्ण के उदय के कारण पुनः प्रसन्न हो रहे थे। [१४३] नवमालिका मदनशर पुष्पों के द्वारा प्रेरित कर रहीं थीं। [१४४] कहीं तमाल वृक्ष अपनी कटि में पादपल्लवों को निवेशित करता हुआ मल्लिका का झुक दृढ़ चुम्बन लेता हुआ प्रतीत हो रहा था। [१४५]

कवि ने बाणभट्ट की शैली में वनश्री की उपमा निशाचरों एवं राम की वाहिनी से भी दी है। वनश्री दशमुख रावण, दिशाएँ की भगिनी की शोभा पा रहीं थीं क्योंकि वह परिचित तर लक्ष्मणा (लक्ष्मण से परिचित, लक्ष्मणा नाम्नी औषधि से पूरित) थी। उस समय अति पृथुलापनासां (स्थूल कटहल के वृक्षों से हीन स्थल नासिकार्हाना) थी। उसके साथ अनेक निशाचर (उलूक आदि राक्षस) थे।---

परिचिततर लक्ष्मणा तदानी, मतिपृथुलाऽपनसं प्रकाश्यरुपम्।
दशमुख भगिनीव बभूव, साक्षादनुगभूरिनिशाचरा वन श्रीः।। (१६/१७)

१४१- रुक्मिणी हरण १६/३

१४२- रुक्मिणी हरण १६/४

१४३- रु० ह० १६/६

१४४- रु० ह० १६/१२

१४५- रु० ह० १६/१५

इसी प्रकार वह राम की सेना की भाँति भी प्रतीत हो रही थी। [१४६] नवीन मधुमत्त भृंगो के राग में कोयल के पंचम स्वर की ताल पर नव लतिका के अभिनय पटुता से सुललिता बन नर्तकी नृत्य करती हुई प्रतीत हो रही थी। [१४७] वनों को तांत्रिक पूजन के रूप में चित्रित करना कवि की अनूठी कल्पना है। [१४८]

रजनिवलयिताऽर्कजातशोभं, घनतिमिरं बहुसोमवल्लरीका।

इयमगुरुकुलोपदिष्ट विद्याऽसृजादिव मानसमोहमन्त्रजालम्।। (रु० ह० १६/२१)

इस वन में ऋषियों की तपश्चर्या के प्रभाव से सभी हिंसक प्राणियों के मन में हिंसा का भाव ही समाप्त हो गया था।

ऋषिभिरिह भृते न काननेऽ, भूदपि सति हिंस्रकुले कदाऽपि भीतिः।

निज सविधगतेषु येन, वैरं ननु साहतेऽधिकृता न तैरहिंसा।।

(रु० ह० १६/२६)

रैवतक पर्वत वर्णनः- श्लोक ३३ से रैवतक पर्वत का वर्णन प्रारम्भ होता है।

बहिरयनमुपागतः स दूरादिरिमथ रैवतकाभिधं ददर्श (१६/३३ पू०)

रैवतक के अधोलिखित वर्णन में कवि की काव्य दक्षता एवं नवीन कल्पनाशीलता अत्यन्त सुरुचि पूर्ण है।

रथरयविपरीतरंहसाऽऽरादिव पवनेन, यथोह्यमानम्।

उपलमयतयाऽतिधूसरागं यदुरमणीतनु, चच्चलाऽभिरामम्।। (रु० ह० १६/३४)

१४६- तत्रैव १६/१८ पनसपरिगता, चलत्पलाशं एवं मारूतकल्पित प्रसाक्तिः, अधिकनकपुरी समुद्रवेलं पद श्लिष्ट है।

१४७- तत्रैव १६/१६

१४८- तत्रैव १६/२१

इस वर्णन में "उपल" शब्द को कण्डे एवं पत्थर अर्थों में प्रयुक्त करना भाषा की नवीनता प्रकट करता है इसी प्रकार "यदुरमणी" में यदु पद से वर्तमान गोपालक अहीरों का अर्थ देना भी आधुनिकता है।

कृष्ण काल के यदु क्षत्रिय थे। कवि ने रैवतक को सागर से उपमित किया है।

जलनिधिमिव फेनिलं सुमानां, स्तबकभरैरभितो विजृम्भमाणम्।
दिशिदिशि शिखरैर्महातरगै, गर्गनतं कलयन्तमन्तरालम्।। (रु० ह० १६/३५)

ताल भारवि एवं घण्टा माघ की शैली से प्रभावित कवि ने कलश एवं कन्दुक की उपमा रैवतक वर्णन में प्रयुक्त की है।

अतुलरुचिरतापथे प्रयाणं, कृतवति जातु बभूव यत्र धातुः।
दिनकर रजनीकरच्छैलेनाद, भुत कलशद्वय दर्शनेऽभियोगः।
कियदिव तरताऽवलम्ब्य येन, रवि शशि कन्दुकनद्धरश्मिजालम्।
सवितरि सहसालयं प्रयाते, रुचि जलधौ विनिमज्जनं प्रपेदे।
(रु० ह० १६/४५-४६)

प्रकृति वर्णनः- सुधानिधि की विदग्ध लेखनी प्रकृति वर्णनों के प्रसंग में चित्रकार की तूलिका की भूमिका निभाती प्रतीत होती है। सर्ग ४ में षडऋतु वर्णन, सर्ग ४ एवं ५ में रजनी वर्णन सर्ग १३ में प्रभात वर्णन एवं पूर्वोक्ति वन पर्वतादि वर्णनों में भाषा एवं लेखनी की चातुरी पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है।

संस्कृत साहित्य के महाकवियों में द्रुत विलम्बित छन्द को प्रकृति वर्णनों के प्रसंग में प्रयोग करने की परम्परा है। सुधानिधि ने भी इसी छन्द में षड् ऋतुओं का सुरभ्य वर्णन किया है।

षड्ऋतु वर्णन-

ग्रीष्मः- चतुर्थ सर्ग में ग्रीष्म से बसन्त वर्णन के क्रम से ऋतुओं का वर्णन किया गया है। ग्रीष्म के ताप की भीषणता को कवि ने अछूते कोणों एवं उपमाओं से देखा है।

ग्रीष्म के आगमन से केवल कामदेव ही अपने को क्षीण बल वाला नहीं मान रहा था। अपितु ऋतुराज के विरहानल से स्वयं सूर्य भी अत्यन्त तप्त हो रहे थे-

स्वबल हानिमवेक्ष्य न केवलम् सकल लोकहृदुन्मथनः स्मरः।

ऋतुपतेर्विरहादपि तु स्फुटम्, दिनकरोऽपि स तापभरं दधे।। (रु०ह० ४/४)

सारे जड़ चेतन को सताने वाले ग्रीष्म ऋतु का एक ही गुण दृष्टिगोचर होता है कि प्राणियों में पारस्परिक वैर भाव नहीं रह जाता एवं सभी परस्पर एक दूसरे का आश्रय लेकर इस महान् वैरी से त्राण पाते है।

सजडजंगम विश्व निपीडनेऽ, प्यबददुष्णत्रन्ततोरति साधुताम्।

असुभृतामितरेतखैरिणामभयमेव परस्परमाश्रयः।। (रु० ह० ४/११)

यहाँ तक कि सर्पो के पेट के नीचे मेढक छिपकर स्वयं को गर्मी से बचाता है।

फणाभृताभुदरस्य तलेऽविशन्नमनिलतापहताः खलुदर्दुराः।

सुखमुवास तथा च कलापिनां, प्रसृत पिच्छविलान्तरहि ब्रजः।।

(रु० ह० ४/१२)

कवि की कल्पना है कि मानो सूर्य की किरणों को मलेरिया बुखार हो गया है। तथा वह सारा ठंडा पानी स्वयं पी गया तथा धरती को भी समान रूप से गरम कर चुका है।

द्रुतमपास्य तमः सिचयाऽवृतिं, रवि करैर्विषमज्वर दूषितैः।

अपि निपीय पयः क्रमशो हिमं, स्ववपुषा सममुष्ण तरी कृतम्।।

(रु० ह० ४/१७)

रात्रि के छोटी होने की प्राकृतिक प्रक्रिया की उत्प्रेक्षा दृष्टव्य है-

दो दिनों की बीच की रात्रि यद्यपि स्वयं अल्पना (सूर्य रहिता) थी तथापि परितापिनी थी। उसकी दशा विरह एवं काम इन दो अग्नियों के सम्पुट में पड़कर अत्यन्त क्षीण हो चुकी नायिका के समान हो गयी थी।

उभयवासर मध्यगता वभावतपनाऽपि तदा परितापिनी।

विरहमन्मथ सम्पुट पीड़िता, तनुतरा वनितेव विभावरी (रु० ह० ४/१६)

वर्षाः- ग्रीष्म के ताप के पश्चात् जब आकाश में काले मेघों का दर्शन हुआ तो कवि को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वे दिनकर की किरणों के लांछन हों।

उपहितं गगनं परिलाम्बिनाऽ, सितरुचा पटलेन पयोमुचाम्।

अभृतनीरभृतं पृथुलांछनं, दिनकरां शुभरेज्वलनादिव।। (रु० ह० ४/२५)

केवल जलधर के आगमन मात्र से आकाश से ही तो धरती का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था अतः धरती के दो नभों ने "घनसन्धि" कर ली।

"विपरिवर्तयितुं जगतः स्थितिं, घनवता वियतैव न शक्यते।

इति मते घनसन्धिनिबन्धनः, स विरराज नभो युग संगमः।। (रु०ह० ४/३६)

इस पद्य में श्रावण मास के समागम का चामत्कारिक वर्णन है। नभः श्रवण एवं का आकाश का पर्याय है। घन, "मेघ" एवं "प्रगाढ़" का प्रर्याय है। इस प्रकार दो नभों के संगम की बात अत्यन्त काव्यात्मक बन पड़ी है।

यदि ज्येष्ठ माह ने जल का शोषण करके सारे समुद्र को बालुकामात्रावशेष कर दिया था तो इस ऋतु ने सारे तटबन्धों को तोड़ कर नदियों को ही सागर बना दिया

था।

स विततान पयः परिषो पारिशोषणाद् यदि तपः सिकताभयमर्णवम्।

इय ऋतौ पुलिनं परिभूयतज्जलभृता सरिताऽभवदम्बुधिः।। (रु०ह० ४/३६)

शरद्ः- शरद् में मेघ में घनत्व नहीं रहता बिजली नहीं चमकती एवं श्वेत कास आदि फूलते है। इस दृश्य पर एक सुन्दर उत्प्रेक्षा प्रस्तुत है।

चपलता तडितां पथि नो दृशोर्विरलमेव पयोधरदर्शनम।

सुमनसामिति कासमुवां निषात्, स्मितिमुवाह नवा शरदंगना।। (रु०ह० ४/६०)

शरद् ऋतु में द्युलोक एवं धरती गुणों में एक समान हो जाते है। द्युलोक में श्वेत बादल धरती पर कास के फूल वहाँ तारक मण्डली के साथ चन्द्रमा यहाँ नलिनी से आवृत सहस्त्रदलपदम्।

दिवि सितोजलदः परिलक्षितो, भुवि च कासभवः सुमनोभरः।

विधुरामुत्र स तारकरजिमानिह सहस्त्रदलं नलिनाऽवृतम।। (रु० ह० ४/६५)

हेमन्तः- शरद के पश्चात सहसा हेमन्त का आगमन होता है। जगत् में दो वस्तुयें छूते ही प्राणियों को कँपा देती है एक अत्यन्त ताप उत्पन्न करने वाला कामदेव दूसरा हिम के भार से जड़भूत हेमन्त की हवाएँ।

द्वयमिदं वपुषः परिकम्पनम्, जनिभृतां जगति स्पृशदेव नः।

अमिततापसमाहरणः स्मरस्तुहिनभारजडश्च समीरणः।। (रु० ह० ४/७६)

वस्तुतः शरद में भी बादलों में जल होगा किन्तु गर्मी से वह एकदम शुष्क हो गया होगा क्योंकि वही सूखा हुआ जल हेमन्त में आकाश से बर्फ के रूप में बरसता है। (रु० ह० ४/७७) यह कवि की भौतिक चमत्कार पूर्ण कल्पना है। हेमन्त में लोधवृख

के पुष्पित होने की उत्प्रेक्षा अद्भुत हैं

भवतु शालिकुलं परसेवितं वितरणाय ममैव परं क्रमः।

इति मुदा स्फुटलोध्र सुमाऽवलीमिषमुपेन्य जहास हिमाऽगमः।। (रु०ह० ४/८०)

कवि अत्यन्त मुग्ध भाव से भी हेमन्त के दर्शन करता है। धरती की ग्रीष्म जन्य विरसता को हेमन्त ने अवश्यायों से पुनः रसांचित कर दिया था। (४/८४) वृक्षों के पत्तों पर गिरी हुई ओस की बूंदें सूर्य की किरणों के प्रकाश में सीप में रखी हुई मोतियों की शोभा पा रही थी। (रु०ह० ४/८५)

हेमन्त के विषय में एक नवीन कल्पना इस प्रकार है- कृषकों ने अपने खलिहानों में अत्यन्त लाभकारी धान्यों को संरक्षित कर रखा था। उन्हें ऊषा काल में चिड़ियाँ आकर जब चुगने लगती है। तो दृश्य अत्यन्त मनोहारी हो जाता है।

परिपणो निहितः पृथुलाभयुक्, समवधाय खलेषु कृषीवलैः।

उषासि यत्र मनोहरतां दधे, शकुनिभिः प्रकटं कणलुण्ठनम्।। (रु०ह० ४/८८)

शिशिरः- शिशिर वर्णन में कवि ने पारम्परिक प्रकृति चित्रण के साथ ही कुछ मौलिक चित्रण भी किया है यथा--

द्वितय हस्तमितं खमितो द्यौ, निशि वलं सममुच्यत कम्बलः।

दिवसमध्यगते च पुराऽऽहतः, स सविशेषमसह्यत नाऽतपः।।

(रु० ह० ४/९५)

शिशिर को भी सूर्य के ताप का उपहास करने वाला बताया है।

उपजहास यतः शिशिरस्तपं, जननशक्तिमपेक्ष्य मदेन तत्।

शिखरिणी ददृशे रदमलिका, धवलकुन्दकुले कलिकावली।। (रु० ह० ४/९२)

बसन्तः- धीरे-धीरे शिशिर का अवसान हुआ। वासन्तिक गुणों को देखने में कवि की सावधानी प्रशंसनीय है। आम्र की नवीन मञ्जरियों को देख सुधानिधि को प्रतीत हुआ कि जो उपलब्धियाँ सफलता प्रदान करने वाली होती हैं, वे आरम्भ में ही अपनी उत्तमता का परिचय दे देती है।--

वितँतमाभ्रतरौ नवमञ्जरी, समुदिता न बबन्ध परं रजः।

शिशुतया सहवास मुशन्ति नो, सफलताप्रवणाह्युपलब्धयः।।

(रु० ह० ४/ ९६)

वस्तुतः किसी भी रस का परिपाक वसन्त के अतिरिक्त कौन कर सकता है वह यवादि धान्य हों अथवा कोई और---

फलम दृश्यत तत्र यवाऽदिषु, परमपक्वतयाऽग्रहणक्षमम्।

वद बसन्तसमागमनं बिना, जगति केन रसः परिपच्यते।। (रु० ह० ४/९७)

बसन्त के साम्राज्य के अत्यन्त सजीव वर्णन इस प्रकरण में दृष्टिगोचर होते है- (विशेषतः ४/९९, १००, १०४, १०६, १०९ आदि)

बासन्तिक प्रभाव तो तन एवं मन दोनों को आप्यायित कर देता है। चन्दन के सुवास से सुरभित पवन के स्पर्श से हृदय में सरसत एवं चित्त में कूतूहल उत्पन्न हो जाता है ऐसी स्थिति में कुलीन प्रमदाओं तरुणियों की भी दशा ऐसी होती है कि उन्हें अपनी याद नहीं रह जाती सामान्य नायिकाओं की बात ही क्या है---

स्पृशति तत्र तनुं मलयानिले, सरसता हृदि चेतासि कौतुकम्।

कुलभवेऽपि तथा तरुणी जनेऽजनि चिराय मुहुर्निजविस्मृतिः।।

(रु० ह० ४/ १०२

वसन्त वर्णन में सर्वाधिक प्रमुख पक्ष उसका मानवीकरण है कमलिनी (४/१२९) चम्पा (४/१३०) रसाललता (४/१२२) भ्रमर (४/१२९, १३०, १२७) आदि

का मानवीकरण वसन्त वर्णन में अत्यन्त मनोहारी एवं प्रासंगिक बन पड़ा हैं। कवि का मानना है कि यदि ऋतु (मौसम, मासिक, धर्म) के समागम से लताएँ (प्राकृतिक, लतिकाएँ, मदनालय) पुष्पिता (पुष्पयुक्त, रजस्वला) हो जाती है तो इसमें आश्चर्य क्या है यह तो प्राकृतिक क्रम जो कि रजस् (पराग, रजोधर्म) पुष्पों में भी रुचिकर प्रतीत होता है। श्लोष के माध्यम से वर्णित इस श्लोक को उत्तम काव्य की कोटि में रखा जा सकता है।

ऋतुमुपेत्य न चित्रमभूदिदं, सकुसुमाः सहसा यदभुर्लताः।
यदि निसर्ग कृतो रजसः क्रमो, रुचिकरः कुसुमेष्वपि लक्षितः।।
(रु० ह० ४/१२४)

काम का यह अनूठा वर्णन संस्कृत साहित्य को समृद्धतर करता है। कवि समझता है कि काम का स्वभाव ही है-- प्रहार करना। जब वह शरीरधारी था तब रति से मिलने के काल में उसने स्वयं अपने ही मन को घायल कर दिया था वह भला किसी को क्यों छोड़ेगा-

प्रहरणं प्रकृतिः सहजा ततो, मनसिजेन न कोऽप्यनुकम्पितः।
तनुभृता रतिसंगमने पुरा, स्वमपि येन मुहुविभिदेमनः।।

रजनी वर्णनः- नायक नायिका के प्रेम के उद्दीपन के रूप में रजनी का महत्व सुप्रसिद्ध है। अतः महाकाव्यों में रात्रि की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन पारंपरिक हो चुका है। पञ्चम वर्ग में कवि ने रात्रि का सुमधुर वर्णन किया है। सम्भवतः बीसवीं शती के कवियों में अत्यल्प ही इतना उत्कृष्ट वर्णन कर पाये होगें। प्रसंग कामालन तप्ता रुक्मिणी के उद्यानानयन का था। अतः कवि निशा को प्रिय वियुक्ताओं के लिए प्राणाघातक के रूप में प्रदर्शित करते हुए कहा कि इस वासन्तिक रजनी के पास चन्द्र

रश्मियों का बन्धन है चन्द्रमा रूपी कटोरे में कलकं रूपी जहर भरा रखा है, तारे शूल का कार्य करते हैं तथा वायु जलाने का। अबला विरहणियों का वध करने के लिए इसने प्रबल प्रबन्ध कर रखा है।

उद्बन्धनं रश्मिगणः सुधांशो, स्तत्रैव पात्रे गरलं कलकंः।

शूलाश्च तारा दहनः समीरोऽबलाबधेऽस्याः प्रबलः प्रबन्धः।। (रु०ह० ५/५)

शब्द प्रयोग चातुर कवि ने "प्रदोषा" एवं "दोषाकर" पदों का प्रयोग कर रात्रि के चारित्रय पर सुन्दर कटाक्ष किया है।

न विस्मयश्चेद्विरहे प्रियस्य, मनो बिमथ्नाति मनस्विनीनाम्।

यदात्मनेयं चरित प्रदोषा, दोषाकरोऽसया हृदयंगमश्च।। (रु० ह० ५/७)

रजनी वर्णन में कवि ने भ्रम विरुद्ध धर्मापत्ति विपर्यय अन्योन्याश्रय एवं चक्र जैसे शास्त्रीय दोषों को दोष के साथ बड़ी सफलता के साथ संयुक्त किया है। यथा---

भ्रमः-

समीक्ष्य संध्या ऽरूणभासमेनां, मनस्यकस्मादतनुः प्रविष्टः।

पुराऽधिकात्याहितकातरः किं, स्मरारि नेत्रोत्थशिखिभ्रमेण।। (५/१०)

काम की संध्या का राग (अरूणिमा) शिव की क्रोधाग्नि समझ में आई और वह तेजी से मन में घुस गया।

विरूद्धः-

भृतं खमृक्षाम्बुरुहैः प्रफुल्लैर्मनांसि क़ान्तानन पुण्डरीकैः।

असूचि तत्किं सहसाऽनया भीरदेशकालं कमलैः प्रबुद्धैः।। (१०/११)

रात्रि स्वयं भी नक्षत्रों को कमलों का रूप देकर भी प्रकट कर रही है। जिससे काम को रात्रि का ज्ञान न हो क्योंकि कमल दिन में ही खिलते है तथा आकाश में नहीं खिलते।

विपर्ययः-

इहाधुना मीलति पंकज श्रीस्तारासरोजैर्निचिता नभः श्रीः।

समं मनोभिस्त मसाऽऽवृतं सत्सर्वं विपर्यस्तमिव प्रतीतम्।। (रु०ह० ५/१२)

यहाँ कमल निमीलित हो रहे हैं किन्तु आकाश में तारा रूपी अनेक कमल खिल रहे हैं। प्राकृतिक स्थिति एकदम विपर्यस्त प्रतीत हो रही है।

अन्योन्याश्रयः-

प्रियन्मनांसि प्रसभं गतानि, यानि स्वयं तैः शरणीकृतानि।

अभूतपूर्वा तदमीषु लोके, परस्परेणाऽश्रयता बिभाति।। (रु०ह० ५/१३)

यहाँ पर मन द्वारा मन के हरण एवं मन से ही पुनः शरण पाने से अन्योन्याश्रितत्व का चामत्कारिक वर्णन है।

चक्रकः-

स्मरो गतिश्चित्तमिदं च कान्तं, स मे स्मृतिं प्रैरि तया मनोभूः।

स्वशासने हन्त कुतो रजन्या, न चक्रकाऽपत्तिरियं विभृष्टा।। (रु०ह०५/१४)

रजनी ने अपने शासन में सर्वत्र चक्रक दोष उत्पन्न कर दिया है। कामचित्त में न रहे अतः वह प्रिय के पास चला गया किन्तु प्रिय की स्मृति के कारण पुनः काम जागृत हो गया। [१४६]

प्रभात वर्णनः- त्रयोदश सर्ग में द्वारकापुरी की अदभुद प्रभात बेला का वर्णन है। रुक्मिणी हरण महाकाव्य का यह प्रभात वर्णन संस्कृत साहित्य में निश्चित रूप से उच्च एवं शाश्वत स्थान पर प्रतिष्ठित रहेगा। कवि ने प्रभात की सारी सुषमा का अत्यन्त ही सूक्ष्म चित्रांकन किया है। भोर की सुमधुर ध्वनि गुञ्जन के क्रमशः स्फुट होने को कवि

१४६- चक्रक लक्षण-- स्वापेक्षापेक्षित सापेक्षितत्व निबन्धन

कितने मुग्ध भाव से देखता है।

यामेष्वथ त्रिषु गतेषु निशीथिनी सा, निष्पन्दनीरवतरा ध्वनिता क्रमेण।
निद्राऽलसेव रमणी रमणीय वाचां, वाचां भरेण रणिताऽभरणा बभूव।।
(रु०ह० १३/१)

चन्द्रमा ने रात को प्ररुढ़ वयसा (वृद्धा) मानकर वीतराग (प्रेमरहित, अरुणिमाहीन) होकर परा (दूसरी, पश्चिम दिशा) के अंक का ग्रहण कर लिया इससे रुष्ट होकर प्रतिक्रिया में रजनी भी अपना सब कुछ देने के लिए प्रभात की ओर दौड़ी चली जा रही थी। यह शुद्ध बीसवी सदी की उत्प्रेक्षा है---

एनां प्ररुढ़वयसां प्रति वीतरागः, सद्यः पराऽंक मुपलभ्य कृती मृगांकः।
सर्व स्वकीयमुपदातुमिति प्रयाति, रोषेण तोष रहिता रजनी प्रभातम्।।
(रु० ह० १३/४)

एक वैज्ञानिक तथ्य का प्रयोग दर्शनीय है।

उत्फुल्ल पुष्पजरजः कण धूसरांगी, सैव प्रभात परिणाममिता नु रात्रिः।
लोके न किंचिदपि नश्यति वस्तु किन्तु, रूपान्तरं ब्रजति यत्तदिदं विनाशः।।
(रु० ह० १३/२४)

वस्तुतः फूलों के पराग से धूसरित होने के कारण रात्रि श्यामला थी किन्तु परिणामतः वह प्रभात ही है। कोई पदार्थ नहीं होता, उसका रूपान्तरण मात्र होता है, वही विनाश कहा जाता है। उसी प्रकार रात्रि का प्रभाव रूप में परिवर्तन उसका नाश कहा जाता है।

प्रभात में कमल शोभा को देख कर कवि उसकी तपस्या की प्रशंसा करता है---

नीरेषु नक्तमुषितं शिशिरेषु मौन, मालम्बितं सततमेक पदे स्थितं च।

आभुद्रिताऽस्यमभृतांशु सुधा न पीता, लक्ष्मीः प्रसीदाति ततः सरसी रुहेषु।।
(रु०ह० १३/२७)

रात भर पानी में रहता है, जाड़ा लगने पर भी कुछ नहीं बोलता, एक ही पैर पर खड़ा रहता है, मुख बंद रखता है, चन्द्रमा द्वारा बरसाये अमृत को भी नहीं पीता इसी कारण सरोजों पर लक्ष्मी पर कृपा होती है अर्थात वे खिलते है।

कवि उत्प्रेक्षाओं के संयोजन में अत्यन्त पटु है। उसे राजहंस भी आरती के उज्ज्वल का दीपक दिखाई दे रहे थे।

स्नेहस्त्रतुं कमलिर्नाषु दशां वहदभिः, निम्ने परिस्फुरित चञ्चुशिखैरमीभिः।
नीराजनाभिव करोति सरः सरोज, लक्ष्म्याः प्रदीप निकरैरिव राजहसैः।।

कमलिनी के प्रति हंसो में स्नेह (प्रेम, धृतादि स्नेह) है चञ्चु (दीपक की लौ की भाँति) परिस्फुरित है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरोवर सरोजलक्ष्मी की आरती कर रहा है।

प्राची के गर्भ से सूर्य के प्रसव की उत्प्रेक्षा अदभुद है-

अतिस्वनेव वयसां विरुतैः प्रसूतेः, पीडाभरादिव परिस्फुट पाण्डुरश्रीः।
प्राची प्रसूय परमात्म भुवं प्रमोदा, द्वालोक मण्डलमयं स्मितमातनोति।।
(रु०ह० १३/६६)

परमात्मा के पुत्र का जन्म प्राची के गर्भ से हुआ। प्रसव वेदना से पहले वह पाण्डुवर्णा हो गयी थी। पक्षियों का कलरव उसका आर्तनाद था। इस तेजस्वी पुत्र को जन्म देकर अब वह मुस्करा रही थी।

व्यक्तित्व निरुपणः- इस महाकाव्य के दो ही चरित्र ऐसे थे जिनका सांगोपांग वर्णन कवि के लिए आवश्यक था।

१- रुक्मिणी।

२- श्रीकृष्ण

प्रथम एवं बीसवें वर्ग में रुक्मिणी के सौन्दर्य का एवं एकादश सर्ग में श्रीकृष्ण के रुप का शील चित्रण कवि ने कथा प्रवाह के अंग के रूप में किया है।

रुक्मिणी- रुक्मिणी के स्वरूप को कवि ने तीन रूपों में देखा है।

१- मुग्धा कन्या।

२- विरहोत्काष्ठिता।

३- वासक सज्जा।

रुक्मिणी का मुग्धा रूपाः- साहित्य शास्त्र में नायिका के स्वस्त्री, परस्त्री, साधारण स्त्री ३ भेद किये गये है।[१४९]

पुनः इनके अनेकानेक उपभेद किये गये है।[१५०] इनमें स्वस्त्री के ३ उपभेद है।[१५१] मुग्धा उन्हीं में प्रथम नायिका है। उसका लक्षण विश्वनाथ ने इस प्रकार किया है।

प्रथमावतीर्ण यौवन मदन विकास रतौ वामा।

कथिता मृदुश्च माने समधिक लज्जावती मुग्धाय।। (सा० द० ३/५८)

मुग्धा लक्षण के इस निकष पर प्रस्तुत में महाकाव्य गत रुक्मिणी रूप वर्णन के प्रकरण को परखना उद्देश्य है।

१४९- सा च स्वस्त्री अन्यस्त्री साधारण स्त्रीति त्रिविधा। (सा० द० प० ३)

१५०- दृष्टव्य सा० द० परिच्छेद ३ नायिका भेद।

१५१- साऽपि कथिता त्रिभेदा मुग्धामध्या प्रगल्मेति। (सा० द० ३/५७)

कवि ने रुक्मिणी को मुग्धा कन्या [१५२] के रूप में चित्रित हुए उसके एक एक अंग का वर्णन प्रथम सर्ग में किया है। रुक्मिणी के नख शिख वर्णन के कुछ सुन्दर उदाहरण प्रासांगिक होने के कारण प्रस्तुत है।

सामान्य वैशिष्टयः-

अबलाऽपि मनोज्ञतायुधि, त्रिजगज्जित्वरविक्रमा गताः।

कठिनैरपि वन्दनीयतामिति, वज्रैरपि सा निषेविता।। [१५३] *(रु०ह० १/२६)*

इसी प्रकार छन्द सं० ४०-४५ भी दृष्टव्य है कवि ने रुक्मिणी का वर्णन चरण से आरम्भ किया है।

न कदाचन चन्द्रपद्मयोः, सहवासं सहतेऽम्बुजासनः।

इति तच्चरणौ नखच्छलान्मधुलोभो दशधाऽभज द्विधुः।। [१५४]

गुल्फः-

विषमेषु कदर्थिताऽयुधो, नालिकायुग्ममिदं समाददत्।

अभिनन्न स कस्य मानसं, गुलिकागुल्फयुगेन मन्मथः।। (रु०ह० १/६३)

नितम्बः-

अमुया तरुणाऽशयेऽर्पिते, किममुष्यै प्रददे मनोभुवा।

विपरीतमुखः स्वदुन्दुभिः, कृतमालोच्यनितम्ब कैतबात्।।

१५२- कन्या त्व जातोपयमा स लज्जा नवयौवना सा० द० ३/६७

१५३- श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। वैज्र शब्द में श्लेष है।

१५४- रु० ह० १/५६

अथवाऽनुकरोतु दुन्दुभिः, कथमेनं कलयाऽपि मान्मथः।
विजये यदगात्सनग्नतां, प्रजिगायैष च वाससाऽऽवृतः।। (रु०ह० १/७५-७६)

रोम राजिः-

किमसावधिरोहणीततिः, स्तनशैलाबधिरोढुमिच्छतोः।
विहितेक्षणयोर्बलित्रयी, जठराऽमाजलधौ निमज्जतीः।। (रु० ह० १/८६)

स्तनः-

रसबीजमिहालऽबालके, सिषिचें रूप जलेन वेंधसा।
सुषुवे जनिता यतः फले, ललिता लोभलता स्तनद्वयम्।। (रु० ह० १/६३)

स्मितिः-

निजपल्लव सम्पुटे तनुर्लतिकाऽजीजनदद्भुतं सुमम्।
इति भृंगततिर्भ्रमं गता स्मितकालेनिपपात तन्मुखम्।। (रु० ह० १/१०७)

केशकलापः-

विधिना जगृदुत्तरीकृतम्, स्फुटमस्याः शुभमंग मुत्तमम्।
विविधाद्भुत पुष्पकान्विता, यदिहासौ शुशुभेऽलकाऽवली।। (रु० ह० १/१४६)

इस प्रकार महाकाव्य की नायिका को कवि की दृष्टि ने अत्यन्त मुग्ध भाव से देखा फिर भी असन्तुष्ट ही रहा क्योंकि रुक्मिणी के जिस अंग पर दृष्टि पड़ जाती थी। वहीं स्थिर हो जाती थी अन्य अंगों को देखने का अवकाश ही नहीं मिल पाता

था।[१५५] वह तो सारी त्रिलोकी के लावण्य को निचोड़ कर बनी सुन्दरी थी। यही कारण था कि उसे देखने के बाद सारा संसार सारहीन दिखाई देता था।[१५६]

रुक्मिणी के रूप को कवि ने बीसवें सर्ग में वर्णित किया है। किन्तु इस प्रसंग में उसके सौन्दर्य की निसर्गता के साथ ही उसकी समृध्दि एवं अलंकारों का भी सुन्दर वर्णन किया है जो कि वास सज्जा की कोटि में रुक्मिणी को प्रतिष्ठित करता है।

रुक्मिणी नख से शिख तक विभिन्न महार्ध अलंकारो से सजी हुई थी गले में मौक्तिक हार रत्नमाला (२०/१४) प्रकोष्ठ में मणि कंकण (२०२१५) अगंद (२०/१६) नास में हीरे का आभूषण (२०/१८) कानो में स्वर्ण कर्णफूल (२०/१६) सिर पर किरीट (२०/२०) आदि आभूषण स्वयं को धन्य मान रहे थे।

इस प्रकार कवि ने भागवत एवं हरिवंश में वर्णत रुक्मिणी के रूपातिशया को अत्यन्त कुशलता से उपवृंहित किया है एवं सहृदयों तक समुचित ललित पदावली के रूप में पहुँचाया है।

श्रीकृष्णः-

इस महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण को ही रुक्मणी के योग्य वर के रूप में प्रदर्शित करने लिए आवश्यक था कि श्रीकृष्ण के मनोरम व्यक्तित्व को सुव्यवास्थित रीति से प्रस्तुत किया जाता क्योंकि नारद ने कह दिया कि-

लभेत सातं कमीनीय मच्युतं, कर्यद एवेन्दुकला हिशोभते।
विहाय कस्मादुचितं विहायसं, न तारकाली विनिपातमेष्यति।। (रु०ह० ३/८२)

१५५- रु० ह० १/१६६

१५६- रु० ह० १/७१

अतः कवि ने एकादश सर्ग में भी श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का वर्णन प्रासंगिक बनाते हुए किया है तथा उसका उपवृंहण १४ वें सर्ग में भी किया है।

यद्यपि इस महाकाव्य के नायक को कवि ने श्रीमद्-भागवत के परमात्मारूप श्रीकृष्ण के रूप में ही प्रतिपादित किया है तथापि उनके मनुज रूप में धरती पर रहने के कारण उनके मानवी धर्मों के सौन्दर्य को कवि ने उनकी भगवत्ता पर भी अतिशायी बनाने का सुरुचिपूर्ण यत्न किया है।

श्रीकृष्ण के श्यामल गात्र के अप्रतिम तेज की उत्प्रेक्षा हृदय स्पर्शी है। (रु० ह० ११/३)

प्रफुल्ल सन्ध्याऽरमत्त चन्द्रिकं, सजा मणीनामुडुभिर्विभूषितम्।
समुल्लसज्ज्योतिरिवापरं तमो, विरोधि तेजः प्रतिहन्तुमुद्यतम्।।

श्रीकृष्ण के अधरों की लालिमा संध्या एवं गले में धारिता माला की मणियों नक्षत्रों की अनुकृति थी।

उनका मुख मण्डल श्यामल चन्द्र के समान दैदीप्यमान था। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे यह ज्योतिरूपतम अपने विरोधी (चन्द्र, शत्रु) के तेज को ध्वस्त करने को उद्यत है।

श्री कृष्ण का शरीर त्रिवेणी की शोभा पा रहा था।

कलिन्द कन्या रुचिरागं संहतिं, सरस्वती भंगतरंगिता धरम्।
प्रसन्न गम्भीर पवित्रशीतलां, दधान्नभक्ष्णोरभराऽपगां श्रियम्।।
(रु० ह० ११/५)

ऐसा प्रतीत होता था कि दिन के डर से निशा शरीर में चन्द्रिका मुखमण्डल में नक्षत्र माला की मणियों में एवं ऊषा चरण कमल में छिप गई हो।

निशा शरीरे शशिनस्त्विषषा मुखे, गलेऽथ नक्षत्रगुणेन बल्गुना।

समेधिताऽमं चरणारविन्दयोरिवोषसा वासरतो भियाऽऽश्रितम् ।।

(रु०ह० ११/७)

आसनस्थ श्रीकृष्ण के शरीर की कान्ति एक बार पुनः त्रिलोकी को पार कर बलि की श्रीकृष्ण का हरण करना चाहती थी।

प्रशान्त सौम्या ऽकृतिमासने स्थितम्, मृदोरपि स्फूर्ति विशेषतस्तनोः।

विलंध्य लोकत्रितयं पुनर्यथा बलिश्रियामाहरणार्थमुद्यतम् ।। (रु०ह० ११/११)

श्रीकृष्ण द्वारकाधीश थे अतः विविध अलंकारों से सज्जित थे। उस पर हार, कानों में कुण्डल, मध्यभाग में मेखला, प्रकोष्ठों में मणि के कंगन, भुजाओं में केयूर एवं गले में बड़ी सी वनमाला जो उनके चरणों को चूमने के लिए व्याकुल थी। [१५७]

श्रीकृष्ण के इस परम दिव्य रूप का दर्शन क्षण भर में समस्त पापों का नष्ट कर देने वाला था।

न जातु सौभाग्यसमृद्धिमन्तरा, द्विजोत्तमानां सहसा समागमः।

कुतोऽद्य तन्मे तब दर्शनाग्निना, क्षणेन सर्बं दुरितं तृणीकृतम् ।।

(रु० ह० ११/२१)

महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में कवि ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का एक और पक्ष उपस्थापित किया है श्रीकृष्ण चन्द्र स्वयं विष्णु स्वरूप थे यह कवि ने अनेक स्थलों[१५८] पर मुक्तभाव से स्वीकार किया है, किन्तु मानव देहधारी परमात्मा भी भक्ति भाव से अनुप्राणित होता है यह प्रमाणित करने के लिए कवि ने कृष्ण के दिनचर्या में शिवपूजन का सुविस्तृत वर्णन किया है। कृष्ण प्रातः स्नान करने के पश्चात नित्य प्रति भगवान शिव

१५७- रु० ह० ११/१२-१३

१५८- सर्ग -१, ११, १२

का पूजन किया करते थे।

स्वयं सामग्री सजाना [१५९], स्नान कराना [१६०], अभिषेक करना [१६१], भस्म लगाना [१६२] चन्दन का त्रिपुण्ड अंकित करना [१६३], पुष्पार्चन [१६४] आदि विविध उपचारों से श्रीकृष्ण नित्य प्रति शिव का अर्चन करते थे। श्रीकृष्ण द्वारा अर्पित बहुमूल्य पूजन सामग्री के मध्य विराजभान भगवान, शिव के लिंग का एक अत्यन्त सुरम्य चित्रण इस प्रकार है।

तदिति महती लिंगं संविधाने निलीनं, जगदुपहितमासीत्तत्र कूटस्थमात्रम्।
उपगतवति काले ध्वंसमत्रोपधाने, भवति यदवशिष्टं स्वप्रकाशस्वरूपम्।।
(रु०ह० १४/१६)

शिव का पूजन द्वारकाधीश राजोचित सामग्री से करते थे इसका निदर्शन, महाकाव्य के १४/१८-३० सर्ग में देखा जा सकता है।

पूजन के पश्चात श्रीकृष्ण शिव की स्तुति करते थे। कवि ने जिस प्रकार कवि निबद्ध प्रौढ़ोक्ति सिद्ध वाक्यों के द्वारा शिव की स्तुति प्रस्तुत की है। उससे सुधानिधि जी पर काशीवास एवं भूतभावन भगवान् शिव (विश्वनाथ) की भक्ति का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही उनकी दार्शनिकता एवं बहुश्रुतता का भी प्रमाण मिलता

१५९- रु० ह० - १४/९

१६०- रु० ह० - १४/१०

१६१- रु० ह० - १४/११

१६२- रु० ह० -१४/१३

१६३- रु० ह० - १४/१३

१६४- रु० ह० - १४/१५

है। यथा---

श्रवणमननलब्धस्त्वं निदिध्यासनेन, परशिव परिदृष्टो योगिनां शं तनोषि।

परधवपरिलुब्धस्त्रीजनानामिव स्याज्जडभरतवदेषामन्यगं चेन्न चेतः।।

(रु०ह० १४/४५)

वेदान्त के मर्मज्ञान को साहित्यिक कलेवर में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।[१६५]

अयि जगदपि शून्यं स्यादभावे निरुक्ते, भजति हि न विभेदं हेतु कार्यस्वभावः।

निगदति नत्रबोधो यद्विरूध्दं ततोऽत्र, भ्रमइति तत्दवैमि पदवैभि प्रतिकूल्यात्प्रभायाः।।

महाकाव्य के २० एवं २१ में श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का परम अजेय वीर रूप का निर्देशन होता है। साथ ही अनेक प्रेम मयी स्वभाव का भी अभिव्यक्ति हुइ है।

रुक्मिणी हरण के अन्य वहितपूर्णक्षण में श्रीकृष्ण के मनोभाव का चित्रण इतनी सुन्दरता से हुआ है कि हरण का साहस कर्म भी प्रेम की कोमल अभिव्यक्ति बन गई है।

पुरब बद्धो यशसा गुणेन वशीकृतो वाचिक वाङ्मयेन।

तदा तयाऽऽकृष्ट इबाथ दृग्म्यामं हरिस्तदर्थे मृश्सामुत्सुकोऽभूत्।।

(रु० ह० २०/६६)

यह श्लोक कवि की मौलिक देन है जो हरिवंश एवं श्रीमद्-भागवत दोनों उपजीव्य ग्रन्थों में प्राप्त इस क्षण के वर्णन से अधिक स्वभाविक एवं तार्किक स्थिति को व्यक्त करता है।

१६५- विशेष देखें - रु० ह० १४/४७-६१

सर्ग २१ में श्रीकृष्ण का वीर स्वरूप वर्णित है।

रुक्मि अपनी सेना के साथ कृष्ण की हत्या करने की प्रतिज्ञा कर उनके पीछे गया था, किन्तु श्रीकृष्ण ने रुक्मि की सम्पूर्ण सेना को खेलखेल में ही धराशायी कर दिया। रुक्मि क्रोधावेश में कृष्ण पर अनेक प्रकार से प्रहार करता जा रहा था।

१६६- विशेष देखें- रु० ह० १४/४७-६१

(ख) कथा का विकासात्मक अनुशीलन :-

सुविदित एवं सुस्थिर सिद्धान्त है कि किसी भी ग्रन्थ के साहित्यक पर्यवेक्षण की पूर्णता उस ग्रन्थ के कलेवर में प्राप्त एवं प्रयुक्त काव्यांगो के अनुशीलन के बिना पूर्ण नहीं होती है। प्रस्तुत महाकाव्य इस दृष्टि से आधुनिक संस्कृत साहित्य में वस्तुतः उत्कृष्ट स्थान पर समाधिरुढ़ है। प्रस्तुत पृष्ठों में इस महाकाव्य में प्रयुक्त काव्यांगो आदि का अनुशीलन इसकी उत्कृष्ठता का स्वतः प्रमाणन करेगा।

(क) छन्दोविच्छिक्तिः- महाकाव्य रचना की परम्परा के अनुसार काव्य का प्रत्येक सर्ग सामान्यतया किसी एक छन्द में निबद्ध किया जाता है, किन्तु अन्त में प्रकरण समापन किसी अन्य छन्द से किया जाता है। जैसा कि साहित्य दर्पणाकार का निर्देश है---

एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः (सा० द० महाकाव्य लक्षण)

वस्तुतः काव्यालोचन के दो पक्ष होते हैं कला एवं भाव। कला पक्ष में छन्दोयोजना के सौन्दर्य का विवेचन किया जाना समुचित है। छन्दः शब्द "छदि संवरणे" (चुरादि धातु सं० ४४) से 'असुन्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। सामान्य रूप से इस शब्द का प्रयोग अभिलाषा इच्छा कामना स्वेच्छाचार आदि अर्थों में होता है।

स्वेच्छाचार अर्थ में इसका प्रयोग बाहुल्य दृष्टिगत होता है। किंचद् इसका अवयवार्थ अनुशासित पदन्यास का भी अभिधान करता है। छन्द का अर्थ है संस्कृत या एक निश्चित सीमा में बद्ध। कवि सुधानिधि अन्य विषयों की भांति छन्द प्रयोग पूर्व अनुशासित रीति से ही करते है। शास्त्रकारों ने महाकाव्य में प्रंसगानुकूल एक ही सर्ग में अनेक छन्दों के प्रयोग का भी निर्देश दिया है। यथा विश्वनाथ पंचानन लिखते हैं।-

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।। (सा० द० महाकाव्य लक्षण)

अतः अनेक छन्दों वाले सर्गों की रचना भी इस महाकाव्य में प्राप्त होती है।

सर्गानुसार छन्दोविधान-

प्रथम सर्गः- भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र के लालित्य का ध्यान रखते हुए रुक्मिणी हरण महाकाव्य का शुभारम्भ कवि ने ललिता छन्द से किया है। इस छन्द का लक्षण वृत्त रत्नाकरकार इस प्रकार करते है।

स सजा विषमें यदा गुरुः।

सभरा स्याल्ललिता समे लगौ।। (वृ० रु० ४/२१३)

जब प्रथम एवं तृतीय चरण में दो सगण, एक जगण एवं गुरु तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में सगण, मगण, रगण एवं एक लघु एक गुरु का विधान किया जाता है, तब ललिता छन्द का निर्माण होता है।

विर राज विदर्भ मण्डले

IIS IIS ISI S

स स ज गुरु

नगरं किञ्चन कुण्डिना हवयम्।

IIS SII SIS I S

स भ र ल- गु

इसी प्रकार मात्रा रचना तृतीय चतुर्थ चरण में भी है। श्लोक १ से १७२ तक ललिता एवं सर्गान्त में बसन्त तिलका [१६७] एवं शार्दूलविक्रीडित छन्दों का प्रयोग उपलब्ध होता है।

१६७- उक्ता वसन्त तिलका त भजा जगौगः।। वृ० र०

वस्तुतः सर्गान्त श्लोक १७३ ही है। अतः उसी में छन्द परिवर्तन हुआ है। श्लोक १७४ सभी सर्गों में प्राप्त होता है। तथा कवि ने इसके माध्यम से अपना परिचय दिया है।

द्वितीय सर्गः- यह सर्ग उपेन्द्रवज्रा छन्द में निर्मित है।[१६८] कवि ने श्लोक १ से १३८ तक उपेन्द्रवज्रा की धारा प्रवाहित करने के पश्चात प्रहर्पिणी छन्द से अवसान किया है। प्रहर्षिणी का लक्षण इस प्रकार प्राप्त होता है।

म्नौ ज्रौ मस्त्रिदशयतिः प्रहार्षिणी यम्।। (वृ० र० ३/१५५)

प्रहर्षिण में १३ मात्राओं पर यदि विधान एवं मगण नगण जगण रमण एवं एक गुरू का विधान होता है। यथा---

उत्कर्षा द्विधि विहितार्हणं स दिव्यैः।

SSS III ISI SIS S

मगण नगण जगण रगण गु० (रु०ह० २/१३६)

इस श्लोक में कवि ने द्वितीय चतुर्थ चरण में अन्त में गुरु का विधान नहीं किया जो उनके पादान्तरस्थस्तु विकल्पेन" के छन्दः शास्त्रीय नियम का सफल प्रयोग कहा जाना उचित है।

तृतीय सर्ग-- तृतीय सर्ग सुप्रसिद्ध वंशस्थ छन्द में निबद्ध है।[१६९] सर्गान्त पुनः पूर्वोक्त प्रहर्षिणी से हुआ है। सर्ग में १४१ श्लोक वंशस्थ एवं १-१ श्लोक प्रहर्षिणी

१६८- उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ। (वृ० र० ३/११५)

१६९- जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ।। (वृ० र० ३)

तथा शार्दूल बिक्रीडित में है।

चतुर्थ सर्गः- संस्कृत साहित्य के सभी उत्कृष्ट महाकाव्यों में प्रकृति या ऋतु वर्णन के लिए महाकवियों ने सदा द्रुत बिलम्बित छन्द का ही प्रयाग किया है। रुक्मिणीहरणकार ने उसी सत्परम्परा का निर्वाह करते हुए चतुर्थ सर्ग (षड् ऋतुवर्णन) को द्रुत बिलम्बित छन्द (१७०) में निबद्ध किया है। १५३ श्लोक द्रुत बिलम्बित में रचने के बाद सर्गान्त बसन्त तिलका से हुआ है।

पञ्चम सर्गः- इस सर्ग की रचना कवि ने उपेन्द्रवज्रा एवं इन्द्रवज्रा (१७१) को मिश्रित कर उपजाति छन्द में की है। १०३ उपजाति छन्दों को पश्चात् वसन्ततिलका से सर्गान्त किया गया है। प्रत्येक श्लोक में प्रथम तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा एवं द्वितीय चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा में निबद्ध है।

षष्ठ सर्गः- इस सर्ग में स्वागता छन्द का प्रयोग किया गया है। श्लोक १ से ११६ तक स्वागता की छटा है इसका लक्षण वृतरत्नाकरकार इस प्रकार करते है।

"स्वागतेति रनभाद गुरु युम्मम्।। (वृ० र६० ३/१२५)

रगण नगण भगण एवं दो गुरु के विधान से स्वागता निर्मित होती है। सर्गान्त में पुनः वसन्ततिलका एवं शादूल विक्रीडित का प्रयोग है।

१७०- द्रुतविलथ्मबत माह नभौ भरौ।। (वृ० र० ३)

१७१- स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौगः। (वृ० र० ३/११४)

सप्तम सर्गः- यह सर्ग रथोद्धता छन्द में विरचित है। इसका लक्षण इस प्रकार है।

रोनराबिह रथोद्धता लगौ।। (वृ० र० ३/३२४)

रगण, नगण, रगण, तत्पश्चात लघु एवं गुरु से रथोद्धता बनती है। सर्गान्त में मालिनी [१७२] का प्रयोग है।

अष्टम सर्गः- इस सर्ग में श्लोक १ से १५६ तक अनुष्टुप वितान का सुन्दर प्रयोग है। सर्गान्त में वसन्ततिलका का प्रयोग किया गया है।

नवम सर्गः- यह सर्ग वसन्ततिलका में विरचित है। इस छन्द में १२५ श्लोकों की रचना के बाद सर्गान्त में हरिणी छन्द का प्रयोग कवि ने किया है। हरिणी का लक्षण इस प्रकार है।

रसयुगहयैन्सौं म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा।। (वृ० र० ३/१८१)

नगण, सगण, मगण, रगण, सगण लघु गुरु का विधान हरिणी है। इसमें यति विधान रस=६, युग=४, हय=७ वर्णो पर होता है।

दशम सर्गः- यह सर्ग पुनः उपेन्द्रवज्रा में निर्मित है सर्गान्त में शिखरिणी का प्रयोग है। इसका लक्षण-

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।। (वृ० र० ३/१७८)

छे एवं ग्यारह मात्राओं पर यति एवं यगण मगण नगण सगण भगण लघु एवं

१७२- ननमयय युतेयं मालिनी भोगि लोकैः (वृ० र० ३)

गुरु शिखरिणी बनाते है १२५ उपेन्द्रवप्रा एवं एक शिखरिणी का प्रयोग इस सर्ग में कवि ने किया है।

एकादश सर्गः- यह सर्ग पुनः वंशस्थ छन्द में विरचित है। एवं सर्गान्त में दो प्रहर्षिणी छन्दों का प्रयोग है। सर्ग में ६६ वंशस्थ हैं।

द्वादश सर्गः- यह सर्ग पुनः वंशस्थ में निर्मित है। श्लोक १-१३५, १३७ वंशस्थ में श्लोक १३६ शिखरिणी एवं १३८-१३६ प्रहर्षिणी में रचित है। सर्गान्त श्लोक पूर्ववत शार्दूलविक्रीडित हैं।

त्रयोदश सर्गः- इस सर्ग में वसन्ततिलका छन्द की छटा हैं श्लोक १ से १०१ तक वसन्ततिलका एवं सर्गान्त कवि परिचयात्मक शार्दूल विक्रीडित से हुआ है।

चतुर्दश सर्गः- यह सर्ग मालिनी छन्द में विरचित है। इसमें भी १०१ श्लोक मालिनी में एवं सर्गान्त शार्दूल विक्रीडित से हुआ है।

पञ्चदश सर्गः- इस सर्ग को कवि ने पुनः अनुष्टप छन्द में रचा है। १०६ श्लोकों के पश्चात सर्गान्त में प्रहर्षिणी का प्रयोग हुआ है।

षोडश सर्गः- इस सर्ग में १-१०८ श्लोक पुष्पिता ग्राछन्द में विरचित है। श्लोक १०६ सर्गान्त श्लोक के रूप में वसन्ततिलका में रचित हैं पुष्पिता ग्राछन्द का प्रयोग सर्ग २० के अन्त में भी हुआ है।

सप्तदश सर्गः- यह सर्ग पुनः उपेन्द्रवज्रा को समर्पित है। १-१०१ श्लोक उपेन्द्रवज्रा एवं सर्गान्त में वसन्ततिलका का प्रयोग हुआ है।

अष्टादश सर्गः- यह सर्ग प्रमिताक्षरा छन्द में रचित है। इस छन्द का लक्षण इस प्रकार है।

प्रमिताक्षरा सजससै रुदिता।। (वृ० र० ३/१४५)

सगण, जगण, सगण, सगण, के विधान से यह छन्द बनता है। इस छन्द में १०१ श्लोक हैं। सर्गान्त में पुनः वसन्ततिलका का प्रयोग है।

ऊनविंश सर्गः- यह सर्ग अनुष्टुप में रचित है। १०४ श्लोकों के पश्चात सर्गान्त में वसन्ततिलका का प्रयोग है।

विंश सर्गः- इस सर्ग में भी उपेन्द्रवज्रा में रचित है। १०० छन्दों के पश्चात सर्गान्त में पुष्पिताग्रा का प्रयोग है। जिसका लक्षण इस प्रकार है।

अयुजि न युगरेकतो य का रो, युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।।
(वृ० र० ४)

प्रथम तृतीय चरणों में दो नगण, रगण, यगण द्वितीय चतुर्थ चरणों में नगण, जगण जगण, रगण एवं गुरु का प्रयोग होता है।

एकविंश सर्गः- यह सर्ग प्रहर्षिणी में विरचित है। १०३ श्लोकों के बाद सर्गान्त पूर्वोक्त शार्दूल विक्रीडित से हुआ है। इस प्रकार कवि ने महाकाव्य में २१ शार्दूल विक्रीडित, १७२ ललिता, १०२ मालिनी, १ शिखरिणी, १ हरिणी, १०१ प्रतिमाक्षरा, १०६

पुष्पिताग्रा, १११ रथोद्धता, ११६ स्वागता, १०३ उपजाति, १५३ द्रुत विलम्बित, १०७ प्रहर्षिणी, २३३ वसन्ततिलका, २७७ वंशस्थ, ३६६ अनुष्टुप, ४६४ उपेन्द्रवज्रा छन्दों का प्रयोग किया है। ये सभी छन्द महाकाव्य के कथा प्रवाह के अनुकूल अवसरों पर ही गुम्फित है।

यद्यपि क्षेमेन्द्र ने सुवृत्त तिलक में कहा है कि कवियों का प्रायः किसी छन्द विशेष के प्रति अभिनिवेश होता है। शेष छन्दों का वे निर्वाह मात्र करते हैं।[१७३] परन्तु सुधानिधी ने जिस भी छन्द को अपनाया उसी में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। उनके के लिए क्षेमेन्द्र का यह कथन उपयुक्त प्रतीत होता है-

एकस्मिन्नेव यैर्वृत्ते कृतो द्वित्रेषु वा श्रमः।

न नाम विनियोगाहस्ति दरिद्रा इवोत्सवे।। (सु० वृ० ति० ३/२५)

सम्पूर्ण ग्रन्थ में कवि ने लघुगुरु विधान के वृन्तरत्नाकरोक्त नियम का सर्वतो भावेन परिपालन किया है। जैसा कि वृत्तरत्नाकार संज्ञा प्रकरण में कहा गया है।

सानुस्वारो विसर्गन्तो दीर्घो युक्त परश्चयः।

वा पदान्तस्त्वसौ वक्रौ सेयोऽन्योमतृको ऋजुः।। (वृ० रु० ६)

कहीं भी कवि ने सरस्वती कण्टाभरण के निम्नलिखित उदार वाक्य के लिए अवकाश नहीं दिया है।

यहा तीव्र प्रयत्नेन संयोगदेरगौरवम्।

न छन्दो भंग इत्याहुस्तदा दोषाय सूरयः।। (स० क० भरण छन्द प्रकरण)

यति विधान के लिए पिंगल छन्द सूत्र में यतिर्विच्छेदः (६/१) मात्र कहा गया

१७३- एकावृनादरः प्रयः पूर्वोषामपि दृश्यते, तत्रैवाति चमत्कारादन्यत्रारब्ध पूरणात्।। (सुवृत्त तिलकम् ३/२८)

है किन्तु हलायुध कार ने इस विस्तृत रूप में व्याख्यायित किया है। यथा–

यतिः सर्वत्र पादान्ते श्लोकार्धे तु विशेषतः।
समुद्रादि पदान्ते च व्यक्ताव्यक्त विभक्तिके।।
क्वाचितु पद मध्येडिम समुद्रादौ यति र्भवेत्।
यदि पूर्वापरौ भागौ न स्यातामेक वर्णकौ।।
पूर्वान्तवत् स्वरसंधौ क्वाचिदेव परादिवत।
दृष्टव्यो यति चिन्तायां यणादेशः परादिवत्।।

हलायुध कार के उर्पयुक्त प्रतिबन्ध इतने कठिन हैं कि कवि भावों पर केन्द्रित होकर छन्दों रचना कर ही नहीं पायेगा। कालिदासादि निपुणतम् महाकवियों के भी ग्रन्थों में उक्त सभी नियमों से यति विधान नहीं दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु रुक्मिणी हरण महाकाव्य में उक्त नियमों का स्वाभाविक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है, शायद ही कोई ऐसा स्थल हो जहाँ कवि यति विधान में विफल हो।

यद्यपि कहाँ यति विधान शोभादायक होती हैं इस विषय में छन्दोमञ्जरीकार गंगादास ने अपने गुरु पुरुषोत्तम भट्ट के निम्न श्लोक उद्धत किया है।

क्वचिच्छन्दस्यास्ते यतिर भिहिता पूर्व कृतिभिः।
पदान्ते सा शोभां ब्रजति पदमध्ये व्यजतिच।।
पुनस्तत्रैवासो स्वरविहित सन्धिः श्रयति तां।
यथा कृष्णेः पुष्णात्वतुलमहिमा मां करुणया।।

स्पष्ट है कि सामाजिक पदों में पदमध्य में यति सर्वता गर्हित है एवं कवि ने इसका ध्यान सर्वत्र रखा है।

(ख) अलंकार सौष्ठवः-

काव्यालंकारों को मुख्यतः तीन भेदों में देखा जाता है।

१- शब्दालंकार।

२- अर्थालंकार।

३- उभयालंकार।

इन अलंकार भेदों में समाहित सम्पूर्ण अलंकार काव्यों के शोभा दायक तत्व के रूप में तभी प्रतिष्ठित होते हैं, जब वे स्वाभाविक रूप में कवि की लेखनी से प्रसूत होते है। अलंकृत करने का उद्देश्य होने पर काव्य का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। सामान्यतः शब्दालांकरों के विन्यास में काव्यगत भावों का विच्छेद दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत महाकाव्यकार में अद्भुद शब्द सामर्थ्य था। तथापि उनकी रुचि शब्दालंकारों के प्रति कम एवं अर्थालंकार + उभयालंकारों के प्रति अधिक होने का सम्भवतः यही कारण रहा होगा।

महाकवि काशीनाथ जी की रससिद्ध लेखनी से जितने भी अलंकारों का प्रयोग बन पड़ा है वे सभी अलंकार प्रसंग, रस, कथा भाव के पोषक ही रहे है। सम्पूर्ण महाकाव्य में एक भी श्लोक अलंकार विहीन नहीं है। किन्तु कहीं भी अलंकारों के प्रति संरम्भ नहीं दृष्टिगोचर होता।

महाकवि के सर्वाधिक प्रिय अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक हैं। इन अलंकारों का प्रयोग प्रत्येक सर्ग में देखा जा सकता है। अन्य अलंकारों में अतिश्योक्ति का प्रयोग कवि ने सौन्दर्य वर्णन के प्रसंगों में अत्यन्त कुशलता से किया है।[१७४]

१७४- दू० रु० ह० १/ १८, २६, १३, /७, १०, १५/४४, ४६, १६/४६, ४७, ४६,१४ /७५, २०, २०/३५, ३७ आदि

अत्यन्त स्वभाविक रूप से सम्प्राप्त अलंकारों में श्लेष[१७५], यमक[१७६], अपहनुति[१७७], संदेह[१७८], दृष्टान्त[१७९], सहोक्ति[१८०], व्याघात[१८१], विरोध[१८२], दृष्टान्त[१८३], अनन्वय[१८४], प्रतिवस्तूपमा[१८५], उत्तर[१८६], पर्याय[१८७], विशेषोक्ति[१८८], दीपक[१८९], परिवृत्ति[१९०], आदि अलंकारों का चामत्कारिक प्रयोग हुआ है।

१७५- रु० ह०-१०/८६, ८१,

१७६- रु० ह० -८ /७५, ७८, १२/३०,

१७७- रु० ह० -१० /११३,

१७८- रु० ह० -११/८७, ६६, १३/५१, २०/३२, २/४७,

१७९- रु० ह०-५/३०, ७/१७,

१८०- रु० ह० -११/६,

१८१- रु० ह०-६/३१,

१८२- रु० ह० -१/२६, २/२७,

१८३- रु० ह०-३/७०,

१८४- रु० ह०-१,

१८५- रु० ह०-७/३,१०/१११,

१८६- रु० ह०-८/८०,

१८७- रु० ह०-६/४०, ७५,/७

१८८- रु० ह०-६/४५, ६/१०, १०/८६,

१८९- रु० ह०-१०/८६,६/५३,

१९०- रु० ह०-१०/८६/२८

समासोक्ति प्रयोगः- सुधानिधि ने दशम सर्ग सर्ग के समुद्रवर्णन प्रंसग में समुद्रोपालम्भ प्रकरण में समासोक्ति अलंकार का विशेष प्रयोग प्रदर्शित किया है। इस सर्ग में मुख्य रूप से श्लोक ६२ से ६७ दृष्टव्य हैं।

छद्मैव रत्नाकरता, तवेयम्, संबन्धमात्रादितरत्र दृष्टम्।
इमा यदापादाशिखं पिनद्धा, भवन्ति मुक्ताव्यपदेशभाजः।। (१०/६२)
मा याचतां मानभृतां वरेण्या, वेलावनाऽली वृषभानुदग्धा।
त्वयाऽप्यनौदार्यमुरीकृतं चेद्, व्यक्ता तवौचित्यविचार शक्तिः।। (१०/६३)
दवीयसी कामगवी श्रुता नः, कल्पद्रुमाः केवलदेवसेव्याः।।
वयं न पात्राण्युचितानि तेषां, मानुष्यके दुर्बलता हि दोषः।। (१०/६५)

इत्यादि श्लोकों में समुद्रोउपालम्भ करते हुए कवि ने व्याजस्तुति के स्थान पर समासोक्ति का चामत्कारिक प्रदर्शन किया है।

ग- रसः- सम्पूर्ण महाकाव्य में श्रृंगार रस प्रधान रहा है। रसराज श्रृंगराज ही काव्य का अंगीरप्त है जिसका पर्यावसान संयोग में किया गया है।

वियोग श्रृंगार परिपाक - कथा के अनुसार रुक्मिणी एवं श्रीकृष्ण का हरण के पूर्व साक्षात् संयोग नहीं हुआ था तथापि कवि में पूर्वानुराग रञ्जिता रुक्मिणी के वर्णन प्रसंग में वियोग श्रृंगार का सम्यक् परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

यद्यपि पूर्वाचार्यों ने श्रृंगार के प्रकरणों में संयोग के पश्चात ही वियोग की अवस्थिति की महत्व दिया है।[१६१] किन्तु मध्यकालिक काव्यों में विप्रलम्भ के अनेक

१६१- द्र० का० प्र० ५ विप्रलम्भ वर्णन

स्वरूप कवियों की लेखनी से उद्भुत हुए अतः विप्रलम्भ के ४ भेद स्वीकृत हुए। [१६२] वस्तुतः विप्रलम्भ की सम्प्राति के लिए रतिभाव की उत्कटता एवं प्रिय का न मिल पाना ही आवश्यक होता है। [१६३]

पूर्वानुरागः- किसी सखी दूती, दूत बन्दी इन्द्रजाल चित्र साक्षात या स्वप्न में[१६४] नायक या नायिका का वर्णन सुनकर यदि रति भाव का जन्म हो तो उसे शास्त्रकार पूर्वराग या पूर्वानुराग कहते है।

श्रवणा दृर्षनाद्वापि मिश्र संरूढ़ रागयोः।

दशा विशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वराग स उच्तयते।। (सा० द० ३/१८८)

प्रस्तुत महाकाव्य में रुक्मिणी ने नारद से श्रीकृष्ण के अद्भुत लालित्य एवं भगवन्ता का वर्णन सुना [१६५] ततूपश्चात श्रीकृष्ण के प्रति उसके मन में स्थाई प्रेम का जन्म हुआ।

वचोभिरेतेः समुदाहृतं यथा, मधूपनीतं मधुपं पयोजिनी।

अजानतैवान्तिककक्षसंश्रया, बभार कृष्णं ह्रदयेन रुक्मिणी।।

यथा न चन्द्रं बिजहाति लांछनम्, यथाऽसिताऽऽभा स्तनमग्र शायिनी।

कदाचिदप्येष विभुञ्चतिस्म नो, तथा तदीयं ह्रदयाम्बुजं हरिः।। (रु०ह०३/१-२)

पूर्वरागात्मक विप्रलभ्भ का सांगोपांग वर्णन कवि ने सर्ग ३ से ७ तक विस्तार

१६२- स च पूर्वानुरागमान प्रवास क रूणात्मककश्चतर्धा।। सा० द० ३/१८७

१६३- यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्ट मुपैति। विप्रलभ्भोऽसौ।। सा० द० ३/१८७ पूर्वा०।

१६४- सा० द० ३/१८६,

१६५- रु० ह० सर्ग २

से किया है। इस प्रकरण में शात्रोक्त काम द्रशाओं में मृति को छोड़कर अन्य सभी का वर्णन ऋतु रजनी चन्द्र आदि उद्दीपनों का वर्णन भी विस्तार से किया गया है। इस प्रकरण में रुक्मिणी मूर्च्छा का वर्णन दृष्टव्य है।

आभाष्य भूरि शुशुभे हृदयानुरूपम्, साऽन्तर्निगूढ़ करणा नयने निर्माल्य।
निर्मारुतस्तिमित वीचिलतेव लक्ष्मीः, पद्माकास्य मुकुलीकृत पुण्डरीका।।
(रु०ह० ६/११७)

रुक्मिणी के मूर्च्छित रूप का यह अद्भुत वर्णन है।

पूर्वतोऽधिकृतभावसौष्ठवैः शिल्पिकौशलमुदाहरान्निव।। (रु० ह० ७/३)

सर्ग २१ में बलवान शिशुपाल एवं कृष्ण रुक्मिणी के युद्ध वर्णन प्रसंगों में कवि ने वीर रस को अत्यन्त मर्यादित स्थान दिया है। अन्यरस अप्राकरणिक एवं क्वाचित्क होने से उपेक्षित ही रह गये हैं यद्यपि ब्राह्मण के द्वारकापुरी प्रवेश के वर्णनों में अद्भुद रस का भी दर्शन माना जा सकता है। [१९६]

(घ) गुणः- सम्पूर्ण महाकाव्य के श्रृंगार रस परक होने के कारण स्वाभाविक रूपेण माधुर्य गुण को ही प्रधान स्थान प्राप्त हुआ है क्योंकि गुण रस के उपकारक के रूप में ही उनका प्रयोग होता है। [१९७] माधुर्य के साथ-साथ प्रसाद गुण [१९८] का भी दर्शन यथावसर [१९९] हुआ है। ओजोगुण [२००] को मात्र सर्ग २१ में स्थान प्राप्त हो सका

१९६- रु० ह० १०/११७, आदि, ११/३०, ३३, ३४ आदि

१९७- उत्कर्ष हेतुत्वाच्छौर्यादयो गुण शब्द वाच्याः।।

१९८- सा० द० प० ८/४

१९९- रु० ह० सर्ग १, २, १४, १६, १७

२००- सा० द० पृ० ८

हैं।

रीतिः- शब्द शैय्या अथवा पद संघटना को साहित्य शास्त्र में रीति शब्द से जाना जाता है। [201] काव्य के आत्मभूत रस के उपकारक गुणों के आधार पर कवि रीतियों [202] का प्रयोग करते है।

रुक्मिणी हरण में माधुर्य गुण प्रधान रहा है। अतः तदनुकूल वैदभी रीति का प्रयोग पूरे महाकाव्य में दृष्टिगोचर होता है। इसके विषय में विश्वनाथ पंचानन का कथन है।

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचनाललितात्मिका, अल्पवृत्तिरवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरुच्यते।।

(सा० द० ६/-३)

इस महाकाव्य में सामान्य तथा असवासा कहीं-कहीं अल्प समासा पद संघटना प्राप्त हैं आवृत्ति पद संघटना यथा,

नो धनुर्नविशिखा न च धन्वी, शिंजिनी स्वनति नर्तनशीला।

इन्द्रजालभवलोक्य विचित्रम्, चाषालं चकित मंचति चेतः।।

समास बिहीन सुन्दर पदावली का प्रयोग कवि की क्षमता प्रकट करती है।

यद्यपि महाकाव्य की रीति पूर्ण रूप से वैदर्भी ही नहीं कहना चाहिए क्योंकि पांचाली रीति [203] का स्पष्ट प्रभाव अनेक श्लोकों में दिखाई देता है। [204] तथापि

२०१- पदसंघटना रीतिरंग संस्था विशेषवत्। सा० द० ६/१

२०२- उपकत्रीरसादीनाम्।। सा० द० ६/१

२०३- वर्णैः शेषैः पुन द्वयोः।

समस्त पञ्चषयदो बन्धः पांचालिका मता।। (सा० द० ६रु४)

२०४- रु०ह० -१/६४, २/४, ३/११४, ४/१०३, ५/५०, ६/३१, १०/६१ आदि।

अल्पसमासा वैदर्भी के प्रवाह में पांचाली रीति के कतिपय स्थलों का प्रापत होना अधिक महत्वपूर्ण एवं रीति निर्णायक नहीं माने जा सकते। भाषा पर अद्भुत अधिकार एवं सामर्थ्य के कारण कवि ने पदे-पदे प्रतिश्लोक में चमत्कार उत्पन्न करने में सफलता पाई है, अत्यन्त सहज प्रवाह का एक सुन्दर किन्तु चमत्कार पूर्ण श्लोक प्रस्तुत है।

गुणानुगा योग विशेष भाजो, निपत्य मुक्ताऽऽवलयोऽपि यत्र।
आश्लिष्ट कण्ठाः कलभाषिणीनां, स्तनेषु चेरूः कनकाचलेषु।। (रु०ह० १०/८६)

(ड.) ध्वनिः- आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा ध्वनि को माना एवं प्रतिष्ठित किया [२०५] मम्मटादि आचार्यों ने उसके भेदादि का सुव्यवस्थितिकरण किया। प्रस्तुत महाकाव्य की उत्तमता का प्रमुख हेतु ध्वनि प्रयोग बहुलता ही है। ध्वनि के प्रमुखतया दो भेद है।

१- लक्ष्मणमूला ध्वनि।

२- अभिधामूलाध्वनि।

लक्षमण मूला ध्वनि ही अविवक्षित वाच्य ध्वनि कही जाती है। इसके भी दो भेद है।

१- अर्थान्तर संक्रमितवाच्य।

२- विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि।

१- अर्थान्तर संक्रमित वाच्य-- रुक्मिणी हरण महाकाव्य में १/१६ में कश्मीर भवः के साथ त्रपया न्यलीयत" का "अंगरोचिः" के उत्कर्ष को लक्षित करता है। एवं "कश्मीर भवः" के हीनत्व का लक्षक है। इसी प्रकार ४/ ४७ में "तडिदंगना" रूपक

२०५- योऽर्थः सहृदयश्लाध्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ध्वन्यालोक १/२

के साथ ननर्त क्रिया पद प्रसाद का लक्षक है। इसी प्रकार ५/१५, ६/२७, ८/३७, १०/१३-२५ आदि अनेक स्थल उदाहरण के रूप में देखें जा सकते है।

२-विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनिः- इसके असंलक्ष्यक्रम संलक्ष्यक्रम दो भेद होते हैं।[२०६] अलक्ष्यक्रम का अनुभव रसपाक में विशेष रूप से होता है। क्योंकि विभावानुभाव व्यभिचारि भावों के आगमन का क्रम रसबोध काल में दृष्टिगोचर नहीं होता। जैसा कि मम्मट की उक्ति है।

रसभावतदाभासभावशान्त्यदिरक्रमः, भिन्नोरसाद्यलंकारादलंकार्यतयास्थितः।।

का० प्र० ४/२६

इसी कारण अलक्ष्यक्रम व्यंग्य को ही रसध्वनि कहा जाता है।

प्रकृत महाकाव्य में रुक्मिणी वर्णन एवं कृष्ण वर्णन के प्रसंगों में रस ध्वनि के उदाहरण पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते है। यथा-

म कदाचन चन्द्रपद्मयोः सहावासं सहसेऽम्बु जासनः।

इति तच्चरणौ नखच्छलान्मधुलोभी दशधाऽभजद्विधुः।। (रु० ह० १/५६)

इस श्लोक में चरणों एवं नखों की कोमलता, मसृणता, शीतलता, गौरवर्ण एवं रक्तामता समनन्तर ही व्यक्त होते हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण वर्णन में।

निशाशरीरे शशिनस्त्विषामुखे, गलेऽथ नक्षत्रगुणेन वल्गुना।

सयेधितामं चरणारविन्दयो, रिवोषस् वासदतोभियाऽऽश्रितम्।।

यहाँ श्रीकृष्ण की कान्ति एवं तेजस्विता चरणों की रक्तिमा एवं सम्पूर्ण शरीर का सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है जबकि आयाततः ध्यान उत्प्रेक्षा एवं पर्याय पर होता है।

२०६- कोप्यलक्ष्यक्रम व्यंग्य क्रमाडेपरः।। का० प्र० ४/२५

यह अतिश्योक्ति नहीं है कि इस महाकाव्य में ध्वनि भेद प्रत्येक सर्ग में भरे पड़े है। सभी को प्रस्तुत करना कठिन है। [२०७]

रुक्मिणीहरण का महाकाव्यत्वः- संस्कृत साहित्य में महाकाव्य का लक्षण सर्वप्रथम आचार्य भामह ने किया तदन्तर दण्डीरुद्रट्, आनन्दवर्धन, कुन्तक अग्निपुराण, कविराज विश्वनाथ आदि ने इसके स्वरूप को समसामयिक दृष्टि से परिमार्जित एवं परिष्कृत किया। सभी लक्षणकारों में विश्वनाथ आधुनिकतम हैं। अतः उनके लक्षण [२०८] को सर्वथा नवीन एवं पूर्ण माना जाता है, इस लक्षण में पूर्वाचार्यों के लक्षणों का सामञ्जस्य एवं अनपेक्षित अंशों के परित्याग एवं उचित का समावेश दृष्टिगोचर होता है।

वस्तुतः लक्ष्यों के अनुकूल ही लक्षण बनते हैं। भामह के काल में महाकवियों की लेखनी जिस शिल्प का निर्माण करती थी, उसके अनुकूल भामह के लक्षण है। विश्वनाथ के समक्ष महाकाव्यों की एक लम्बी सूची थी, अतः उनका लक्षण अधिक समसामयिक होना स्वाभाविक भी है।

यद्यपि प्रकृत महाकाव्य विश्वनाथ के ४ शती के पश्चात निर्मित हुआ है। तथापि आज भी साहित्य दर्पण के महाकाव्य लक्षण का सामान्य एवं परिपालन सत्कवियों में देखा जाने के कारण उसकी प्रामाणिकता अक्षुण्ण है। अतः प्रकृत महाकाव्य के

२०७- १/११, १५, २५, ५१ ५७, २७, ६, १२, १७, २०, २५, ३/५, ७०, ४/२, ४, ७, ८, २०, ५५, ५७, ८०, ८२, ५/७, १०, २१, २३, ८७, ६/६, ७, ११, २५, २८, ३०, ७/२१, २६, ३८, ४०, ४२, ७७, ६१, ८/१०, १३, १४, १६, १६, ६/२०, १०/१७, १६, ३३, ३७, ४८, ८८ आदि।

२०८- सा० द० पृ० ६

महाकाव्यत्व का निष्कर्ष विश्वनाथ कृत लक्षण ही मानना उचित प्रतीत होता है। अतः प्रस्तुत में इसी आधार पर इसके महाकाव्यत्व का अनुसंधान किया जा रहा है।

१- प्रायः काव्यशास्त्रकार महाकाव्यों को सर्गबन्ध होना आवश्यक मानते हैं। प्रकृत महाकाव्य में सर्गबन्धत्व लक्षण पूर्ण रूप से घटित होता है। सर्गों की संख्या के विषय में भामह दण्डी आदि पूर्वाचार्य मौन रहे हैं। किन्तु विश्वनाथ का स्पष्ट निर्देश था- सर्गा अष्टाधिकाइह।। (सा० द० महा० ल०)

प्रकृत महाकाव्य में २१ सर्ग है अतः यह लक्षण भी घटित है। सर्गों के विस्तार के विषय में विश्वनाथ का कथन है-- नाति स्वल्पा नाति दीर्घाः।। (तत्रैव)

यद्यपि दण्डी ने काव्यादर्श में मात्र अनति विस्तीर्णैः ।। (का० द० महा० ल०) कहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सभी सर्गों में १०० या उससे अधिक २०० से कम श्लोकों की मर्यादित रचना है। इस प्रकार विश्वनाथ का लक्षण न छोटा, न बड़ा पूर्ण रूप से घटित है।

रुद्रट के अनुसार (काव्यालंकार अ० १६) विषयों का उतना ही अलंकरण उचित है, जितने में कथावस्तु में विच्छेद न हो सुधानिधि जी ने विषयों के अलंकार एवं कथा प्रवाह में अद्‌भुद चातुरी का प्रदर्शन किया है। यदि प्रश्न हो कि रुक्मिणी के पूर्वानुराग का प्रकरण ५ सर्गों तक खींचा जाना कथा प्रवाह को रोकता है तो उत्तर होगा कि रुक्मिणी का हरण करने जैसा साहसिक कार्य बिना उसके प्रेम की उत्कृष्टता को हृदयंगत किये उचित नहीं कहा जा सकता था। अतः रुद्रट के लक्षण से भी प्रकृत ग्रन्थ में वैषम्य नहीं दिखाई देता। तत्रैकोनायकः सुरः (सा० द०)

इस कथन के अनुरूप ही सुधानिधि ने महाकाव्य के नायक के रूप में भगवान श्रीकृष्ण को चुना है इतना ही नहीं प्रथम सर्ग में ही नारद कृत कृष्ण वर्णन के

प्रसंग में उनका विष्णु रूप होगा एवं विभिन्न अवतार लेकर राक्षसों का संहार करना भली-भाँति सुस्थापित किया है।

२- यद्यपि नायक का सुर या देव वृन्त में होना प्रथम लक्षण है किन्तु अन्यों का नायकत्व ग्रहण करने के लिए शास्त्रकारों ने- सद्धंशः क्षत्रियोऽपि वा।। (तत्रैव) कहा है। हमारे नायक श्रीकृष्ण इस लक्षण से भी ठीक है। यद्यपि वे साक्षात विष्णु है। (स०-१) तथापि उनका सम्पूर्ण कार्य कलाप चन्द्रवंशीय क्षत्रिय के रूप में द्वारका के नरेश के रूप में वर्णित है। अतः उनके नायकत्व में देवत्य लक्षण एवं मनुष्यत्व लक्षण पृथक्-पृथक् घटित होते हैं।

प्रकृत नायक श्रीकृष्ण धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त के लक्षण के अनुसार उसे सर्वथा अनात्मश्लाघी होना चाहिए [२०९] यह लक्षण महाकाव्य में आद्यन्त नायक में दृष्टिगोचर होता है। [२१०] धीरोदात्त क्षमाशील होता है। श्रीकृष्ण भी वध की प्रतिज्ञा करने वाले रुक्मि को क्षमादान करते है। रुक्मिणी की प्रार्थना सुनकर महाक्रोध में शिरश्छेद के लिए खड्ग उठाने पर भी कृष्ण मुस्कान के साथा क्षमा कर देते है।

"श्रुत्वा तन्निजमनसो ऽनुरूपमस्या, मन्देन स्फुटमनमोदयन्स्मितेन।
तं बद्धं हरिरकरोद्रथस्य पृष्ठे, मूर्धानं झटिति विधाय सप्तचूडम्।।
(रु० ह० २१/६९)

तथा जब बलराम आग्रह करते हैं तो मुक्त भी कर देते है। [२११] धीरोदात्त

२०९- अविकत्थन क्षमावनति गम्भीरो महासत्वः।
स्थेयानिगूढ़ मानो धीरोदात्तः दृढ़व्रतः कथित।। सा० द० ३/३२

२१०- विशेष देखें- सर्ग १२, १४, २१

२११- देखे सर्ग- २१/७०-८०

का तृतीय गुण गाम्भीर्य है इसका उत्कृष्टतम निदर्शन सर्ग ११-१२ में हुआ है।

श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के प्रति अत्यन्त प्रेम भाव रहने पर भी ब्राह्मण दूत के द्वारा रुक्मिणी का संदेश पाकर भी स्व हृदय व्यक्त नहीं करते अपितु निम्नलिखित वाक्यों का प्रयोग करते है।

असीम सौन्दर्यपमारनैपुणं नवं वयः कोमलताऽतिशायिनी।
कुलं प्रशस्तं जगदुत्तरा मतिर्मनोविरोधे सकलं विरुध्यते।।
वशंवदोऽहं विनतोऽस्मि सर्वथा यथानिदेशं च विधातुमुद्यतः।
अथापि किं स्यादुचिता न वा कृता विचारणेयं समयानुसारणी।।
(रु० ह० ११/४६-४६)

इसी प्रकार की गम्भीरता युद्धकाल में भी प्रदर्शित है। नायक श्रीकृष्ण अकेले रुक्मि की सेना से युद्ध करते हुए अविचल एवं शान्त ही रहे। महासत्वगुण कोरी कृष्ण के प्रत्येक प्रसंग में देखा जा सकता है। विशेष रूप से सर्ग १४ में उनके अद्भुद सत्व का परिचय प्राप्त होता है। प्रेम हो या युद्ध प्रत्येक परिस्थिति में उनका सत्व निर्लिप्त दिखाई देता है। धीरोदात का अन्य गुण द्रढ़व्रत होना है। ब्राह्मण का संदेश पाकर श्रीकृष्ण ने जब रुक्मिणी हरण का निश्चय किया तब तत्काल रथ पर आरूढ़ होकर प्रतिज्ञा पालनार्थ एकाकी ही चल पड़े एवं पूरा किया। रुक्मिणी अत्यन्त विषम परिस्थिति में श्रीकृष्ण के दृढ़व्रत चरित्र पर विश्वास कर आश्वस्त होती है।[२१२]

इस प्रकार विश्वनाथोक्त धीरोदात्त के सभी लक्षण नायक में घटित होते है। अतः महाकाव्य का नायक धीरोदात्त कोटि का ही सिद्ध होता है।

प्रायः श्री कृष्ण से सम्बद्ध काव्यों में श्रीकृष्ण को धीर ललित नायक के रूप

२१२- दृ० सर्ग १२ एवं १७

में चित्रित किये जाने की परम्परा रही है यहाँ तक की जयदेव के मथुराधिपति श्रीकृष्ण में भी ललित नायक की ही छवि दृष्टिगोचर होती है। अतः इस पक्ष की भी समीक्षा आवश्यक है। धीर ललित के विषय में साहित्य दर्पणकार की उक्ति है।[२१३]

निश्चिन्तो मृदरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्।। (सा० द० ३/४०)

धीर ललित स्वभावतः निश्चिन्त होता हैं युद्धादि आपत्ति के क्षणों में भी चिन्ताकुल नहीं होता। ऐसा नायक सचिवों पर राज्य भार निक्षिप्त कर स्वयं ललित कलाओं में लीन रहा करता है। राज्य में आयोजित महोत्सवों में भी प्रायः उसकी रुचि होती है।

प्रस्तुत महाकाव्य का नायक कभी भी लीला विलास में लीन नहीं वर्णित है, अपितु उसकी दिनचर्या अत्यन्त उदात्त वर्णित है।[२१४] प्रथम सर्ग में भी नारद ने उनके प्रजारंजकत्व शौर्य एवं भगवक्ता आदि गुणों का उदात्त वर्णन किया है। साथ ही प्रकृत नायक ने रुक्मिणी हरण के पश्चात सम्पूर्ण सेना से अकेले अत्यन्त उग्र युद्ध किया है। अतः प्रकृत नायक में धीर ललित का घटन सम्भव नहीं है।

महाकाव्य के लक्षण के अनुसार श्रृंगार, शान्त एवं वीर रसों में किसी एक को अंगीरस बनाना आवश्यक होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रृंगार रस को अंगीरस के रूप में स्थापित किया गया है। रसराज श्रृंगार के वितान में कवि की लेखनी ने उत्कृष्टतम क्षमता का प्रदर्शन किया है। महाकाव्य की नायिका रुक्मिणी का सर्वांग वर्णन वयः सन्धि यौवन[२१५] आदि के उदात्त वर्णन चामत्कारिक है। कवि ने रुक्मिणी के पूर्वानुराग को आधार बना कर विप्रलम्भ का सर्वाधिक विस्तार से वर्णन किया है।

२१३- श्रीकृष्ण की दिनचर्या सर्ग १४

२१४- रु० ह०-१

२१५- रु० ह०-३

रुक्मिणी का कृष्ण से पूर्वानुरूक्त होना माता का उसकी दशा देखकर चिकित्सकों की सहायता लेना[२१६] वियोगावस्था में षड्ऋतुओं का वर्णन[२१७] उद्यानागमन[२१८] रात्रि समागम एवं उसका वियोग पुष्ट करना[२१६] चन्द्रमा के प्रति रुक्मिणी का उपालम्भ[२२०] काम के प्रति उपालम्भ सात्विक भाव मूर्च्छा[२२१] आदि के वर्णनों में विपलम्भ का अतिशायित्व वर्णित है। श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के विवाह के प्रस्ताव पर रुक्मि का विरोध, शिशुपाल से उसके विवाह का निश्चित होना, श्रीकृष्ण के पास दूत क़ा जाना एवं श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के प्रेम के उत्कर्ष को जानकर उसका हरण करने तक की पूरी कथा विप्रलम्भ से अनुप्रणित है।[२२२] अन्तिम सर्ग में श्रीकृष्ण का रुक्मिणी से समागम के वर्णन में ही संयोग श्रृंगार का दर्शन होता हैं इस प्रकार महाकाव्य में संयोग की उपेक्षा वियोग पक्ष अधिकतर प्रधान है।

अन्य अंगीरसों में वीर[२२३], रौद्र[२२४], अद्भुद[२२५] एवं मुख्य रूपेण शान्त[२२६]

२१६- रु० ह०-४

२१७- वही

२१८- वही

२१६- रु० ह०सर्ग-५

२२०- रु० ह०सर्ग-६

२२१- वही

२२२- रु० ह० सर्ग ८-२०

२२३- रु० ह० सर्ग -२१

२२४- तत्रैव

२२५- रु० ह० सर्ग-१०

२२६- रु० ह० सर्ग-१-१४

का सम्यक् परिपाक हुआ है।

श्रृंगार रस का नाट्य शास्त्र में दो किन्तु दशरूपक में तीन भेद प्रतिपादित है।(२२७) सामान्य रूप से भरतोक्त संयोग-वियोग के लिए काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में विप्रलम्भ शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। संयोग वियोग आदि शब्द शास्त्रकारों को अनुकूल प्रतीत नहीं होते किन्तु दशरूपककार इससे सहमत नहीं थे। उनके अनुसार विप्रलम्भ नामक भाव में वंचना का भाव प्रधान होता है। इस प्रकरण पर दशरूपक के टीकाकार धनिक के अधोलिखित शब्दों की प्रासंगिकता है।

२- अयोग-वियोग विषयत्वाद्विप्रलम्भस्यैतत्सामान्याभिधायित्वेन विप्रलम्भ शब्द उपचरित वृत्तिर्माभूदिति न प्रयुक्तः।

तथाहि दत्वा संकेतमप्राप्ते अवध्यधिक्रमे साध्येन नायिकान्तरानुसार वाच्य विप्रलम्भ शब्दस्य मुख्य प्रयोगो वंचनार्थत्वात्।। (द० रू० ६/४५ दी०)

प्रकृत महाकाव्य में रुक्मिणी के पूर्वानुराग के परिपाक में श्रृंगार के जिस पक्ष का दर्शन होता है। उसे धनञ्जय की परिभाषा में आयोग श्रृंगार की कोटि में रखा जा सकता है। इस लक्षण के अनुसार की उत्कटता के कारण रुक्मिणी वियोग का वर्णन अयोग है किन्तु सामान्य रूप से विप्रलम्भ शब्द ही प्रयोग में है एवं समीचीन भी है।

जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि कविराज विश्वनाथ में विप्रलम्भ श्रृंगार के भेद प्रकल्पनके अवसर पर स्पष्ट रूप से पूर्वानुराग की अवस्था को कोटि में दर्शाया है।

३- यत्र तु रति प्रकृष्टानाम भीष्टमुपैति विप्रलम्भ विप्रलम्भोऽसौ।
स च पूर्वरागो मान प्रवास करुणात्मकश्चतुधी स्यात्।। (सा० द०)

२२७- ना० श० ६/४५, दशरूपक ४/५८

रुक्मिणी हरण में सुधानिधि जी ने रुक्मिणी के पूर्वानुराग के पाँच सर्गों में विस्तार से किया है।[२२८] नायक नायिका अथवा दोनों के मन में प्रिय प्राप्ति की उत्कण्ठा जन्य तो व्याकुलता होती है उसे पूर्वाराग कहा गया है। पूर्वाराग या पूर्वानुराग की चार परिस्थितियाँ बताई गई हैं।

१- चित्र दर्शन २- गुणानुश्रवण ३- स्वप्न दर्शन ४- प्रत्यक्ष दर्शन

काव्य प्रकाशकार ने राग के चार प्रकार इस प्रकार बतलाये है।

१- अभिलाष।

२- ईर्ष्या।

३- प्रवास।

४- शापहेतुक (क० प्र० उ० ३)

इस प्रकार काव्य प्रकाश का अभिलाष साहित्य दर्पण रूप विप्रलम्भ श्रृंगार ही रुक्मिणी के सौन्दर्य में व्यक्त हुआ है। इसका अंकुरण नायक के गुणाश्रवण से हुआ है। सर्ग २० में मन्दिर के बाहर, श्रीकृष्ण रुक्मिणी के प्रत्यक्ष दर्शन के साथ संयोग रूप में परिणत हो गया है।

इस प्रकार

श्रृंगार वीर शान्तनामेकोऽंगीरस इष्यते,

अंगानि वा सर्वेऽपि रसाः-----।

यह लक्षण भी पूर्णतया घटित होता है।

इस प्रकार सभी नाटक सन्धियाँ भी यथास्थान सन्निविष्ट है।

महाकाव्य का वृत्त ऐतिहासिक होना चाहिये-

२२८- रु० ह० सर्ग-३-७

५- इतिहासोद्भवं वृत्तम्। इस दृष्टि से प्रकृत कथानक भागवत पुराण से गृहीत होने से पूर्णतः इतिहासोद्भवं वृत्त जिसका मूल हरिवंश पुराण है। महाभारत इतिहास है एवं हरिवंश उसी का प्रामाणिक परिशिष्ट है।

६- "चत्वारस्तस्यवर्गास्स्युस्तेतेष्येकं फलं भवेत्।।" इस लक्षण के अनुसार धर्मार्थ काममोक्ष में प्रकृत महाकाव्य का फल कम स्पष्टतया सिद्ध है, यद्यपि सम्पूर्ण महाकाव्य में धर्मार्थ मोक्ष वर्गों का संधान यथावसर हुआ है जैसे- रुक्मिणी की आस्तिकता, श्रीकृष्ण की भगवत्ता एवं अवतार होना शिवसपर्या आदि अवसर धर्म स्थापक है राजनैतिक दृष्टि से नायक का रुक्मिणीहरण से लाभ अर्थ पुरुषार्थ का द्योतक है किन्तु ये वर्ग- महाकाव्य के आनुबंगिक वर्ग हैं। प्रमुख वर्ग काम ही है।

महाकाव्यत्व की सिद्धि के लिए आवश्यक है ग्रन्थारम्भ मांगालिक हो।

७- आदौ नमस्क्रियाशीर्वावस्तु निर्देश एववा।। (सा० द०)

इस सिद्धान्त के अनुसार नमस्कार आशीः अथवा वस्तुनिर्देशात्मक त्रिधा मंगलाचरण में किसी एक का अनुसरण करना चाहिये। प्रस्तुत महाकाव्य में प्रथम श्लोक में विरराज पद प्रयोग (रु० ह० १/१) से वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण की पुष्टि होती है, यद्यपि परम्परानुसार इस महाकाव्य का प्रथम श्लोक मांगलिक श्लोक नहीं कहा जा सकता, किन्तु ग्रन्थकार ने स्वरचित भूमिका में इस कमी को भली भाँति पूरा किया है।

भूमिका में कवि ने तीन श्लोकों में परावाणी, सरस्वती एवं श्री परि को प्रणाम किया है। (रु० ह० भूमिका पृ० १)

८- "क्वाचिन्निन्दाखलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।। इस सिद्धान्त का अनुपालन

महाकाव्य का लक्षण है। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रीकृष्ण की प्रशंसा [२२९] एवं शिशुपाल जरासंध [२३०] आदि की निन्दा सम्यक् रूप से वर्णित है।

९- महाकाव्य के लिए--

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेभ्य वृत्तकैः।। के सिद्धान्त का अनुपालन सामान्य रूप से निर्दिष्ट है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम सर्ग से अन्तिम सर्ग तक इसका व्यवास्पत निर्वाह हुआ है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने शार्दूल विक्रीडित में स्व परिचय एवं श्लोक को भी अधिकांश सर्गों सर्गगत छन्द से भिन्न में ही रखा है।

१०- सर्गान्त में आगामी सर्ग के कथा की सूचना आवश्यक मानी गई है।

"सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्"।। यद्यपि साहित्य दर्पणोक्त इस लक्षण को पूर्वाचार्यों ने ही नहीं स्वीकार किया है तथापि प्रस्तुत महाकाव्य में सर्गान्त में अग्रिम सर्ग के घटना की सूचना यथासम्भव दी गई है। जिन सर्गों में कथा प्रवाह स्थिर है यथा-सर्ग ३-७ उनमें भी कुछ संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं।

११- इसी प्रकार प्रकृति वर्णन महाकाव्य का आवश्यक तत्व होता है।
जैसा कि विश्वनाथ ने कहा है।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोष ध्वान्तवासराः।
प्रातर्भध्याहवमृगया शैलर्तुवन सागराः।। (सा० द०)

२२९- दृ०- रु० ह० सर्ग २, ८, १२, १४

२३०- दृ०- रु० ह० सर्ग ८, ११

इस दृष्टि से सुधानिधि जी की रचना अत्यन्त समृद्ध है- सर्ग ४ में षड्ऋतु वर्णन, उद्यान वर्णन, संध्या वर्णन, सर्ग ५ में रात्रि वर्णन, चन्द्र वर्णन, सर्ग १० में सागर सेतु वर्णन, वन वर्णन, सर्ग १३ में प्रभात वर्णन, सर्ग १६ में वन पर्वत आदि का वर्णन आधुनिक काव्य धारा के मानक कहे जा सकते है। जहाँ कवि की कल्पनाशीलता एवं शब्द प्रयोग चातुरी अत्यन्त उदात्त है।

"संयोग विप्रलम्भौ मुनिस्वर्गपुरा ध्वराः।।" इस सिद्धान्त के अनुसार महाकाव्य में संयोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वार्गादि दिव्यपुरी एवं यागादि का वर्णन होना चाहिए। प्रस्तुत महाकाव्य में श्रृंगार ही अंगी है एवं सर्ग २ में नारद का वर्णन, प्रथम श्लोक में ही कुण्डिनपुर को स्वर्ग का अवतार बताना एवं सर्ग १० में द्वारकापुरी की दिव्यता का वर्णन सर्ग १४ में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा शिव की पूजा का विस्तृत वर्णन, रुक्मिणी द्वारा पार्वती पूजा (सर्ग २०) आदि प्रकरण उक्त लक्षण के अनुकूल है।

आचार्यो के अनुसार रण प्रयाणदि का वर्णन भी अवश्य होना चाहिए।

रणप्रयाणोपयममन्त्रोदथः।

वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगा अमीइह।। (सा० द०)

इस दृष्टि से प्रकृत ग्रन्थ में सर्ग १५ में श्रीकृष्ण रथ वर्णन, प्रयाण वर्णन सर्ग २१ में बलराम शिशुपाल सर्ग १३-१४ में ब्राह्मण दूत एवं श्रीकृष्ण का वार्तालाप भी मन्त्रणा रूप ही है।

१४- महाकाव्य के नामकरण के विषय में काव्यशास्त्र का सिद्धान्त है कि---

कवेर्वृन्तस्यस वा नाम्ना नायकस्येतास्य वा।

नाम्नः सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु।। (सा० द०)

प्रकृत ग्रन्थ रुक्मिणी के हरण की कथा पर आश्रित है अतः कथा के अनुकूल ही "रुक्मिणी हरणम्" यह नामकरण शास्त्रानुकूल है।

१५- महाकाव्य में नायक का उत्कर्ष एवं शत्रुओं प्रतिनायकों का पराभव वर्णन होना चाहिए जैसा कि दण्डी का कथन हैं

"गुणतः प्रागुपन्यस्य नायकं तेन विद्विषाम्।
निराकरणमित्येष मार्गः प्रकृति सुन्दरः।। (काव्यदर्श)

भामह भी इसका अनुमोदन करते है।

नायकं प्रगुपन्यस्य वंशवीर्यश्रुतदिभिः।
तस्यैव वधं ब्रूयादन्योत्कर्षाभिसंधित्यसा।। (काव्यालंकार परि-१)

प्रकृत महाकाव्य में भामह प्रकल्पित प्रतिनायक बध नहीं है किन्त दण्डी प्रोक्त "निराकरण" या पराभव अवश्य वर्णित है। महाकाव्य का प्रतिनायक शिशुपाल एवं रुक्मि, बलराम व श्रीकृष्ण द्वारा पराभूत हुए है (सर्ग २१) साथ ही श्रीकृष्ण के उत्कर्ष का सम्यक् प्रतिपादन हुआ है।

पाश्चात्य काव्य शास्त्रियों के लक्षणों को घटाने पर भी रुक्मिणी हरण महाकाव्य की महाकाव्यता सुप्रमाणित होती है। अरस्तु के अनुसार नाट्य की मर्यादाओं के अनुकूल जिस ग्रन्थ में किसी एक विषय का पूर्ण एवं सजीव वर्णन होता है उसे महाकाव्य की कोटि में रखना चाहिए [२३१] महाकाव्य का नायक एवं वृन्त महचरित्र होना चाहिए। इस विषय में रुद्रट आदि भारतीय आचार्यों की भाँति अरस्तु का भी चिन्तन उत्तम है।

जीवन के युद्ध क्रान्ति आविष्कार दुर्घटना आदि व्यापारों का वर्णन रुक्मिणी हरण में प्राप्त है। साथ ही भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिपादित प्रयोजन या उद्देश्य लोक को सकल प्रयोजन मौलिभूत आनन्द रूप रसचर्वणा भी है। महाकाव्य में उत्कृष्ट नायक

२३१- A.B. Butcher. 4 Ed. London 1927, pp. 89-91

कृष्ण का रुक्मिणी के साथ संयोग का वर्णन सामान्य पाठक को आनान्दित करता है साथ ही काव्य मर्मज्ञों के लिए कवि की लेखनी से चित्रित रसभाव अनुभूति आदि आह्लादोत्पादक है। पाश्चात्यों के विचार से-

१- महत्वपूर्ण लोक प्रसिद्ध एवं व्यापक कथावस्तु होना चाहिए।

२- नायक इतिहास प्रसिद्ध उदात्त गुण युक्त विजयी राष्ट्र प्रतिनिधि होना चाहिए।

ये दोनों लक्षण प्रकृत ग्रन्थ में समन्वित होते है। इस विषय में डिक्सन के शब्द स्मरणीय एवं प्रासंगिक है।

Yet heroic poetry is one, whether of the east or west, the north or south, its blood and temper are the same and the true epic, whenever created, will be a narrative poem.

Organic in structure dealing with great actions and great characters in a style commen surate with the lordiness of its theme, which lends to idealize these charecters and action and to sustain and embellish it subject by means of episod and amplification. (२३२)

उपर्युक्त विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय लक्षणकारों ने महाकाव्य लक्षण विचार के प्रकरण में महाकाव्य के बाह्यंगों के लक्षणों पर अधिक विचार किया है। परिणामतः महाकाव्य की आत्मा या जीवित तत्व उपेक्षित सा हो गया है। काव्य शर्रार का प्रमुखता से प्रतिपादन है किन्तु आत्मा का प्रतिपादन विस्तृत नहीं हो सका है। सम्भवतः शास्त्रकारों की इस वृत्ति ने ही मध्यकाल में विचित्र मार्ग या अलंकृत महाकाव्यों की रचना को प्रोत्साहित किया होगा। इसी प्रकार कथावस्तु के चयन में रामायण महाभारत से ही कथाचयन की विवशता उत्पन्न कर दी थी। केवल इन्हीं ऐतिहासिक

२३२- M. Pison, English Epic and heroic poetryn---page 24.

काव्यों के नायक पर आधारित काव्य ही महाकाव्य कहे जा सकते है। इस बन्धन से जहाँ उदात्त एवं लोक स्वीकृत चरित्र का पुनः पुनः कालानुमत वर्णन होने से लोक को कान्तासम्मित उपदेश मिला, वहीं कवि की लेखनी काल्पनिक नायक एवं कथाओं का सृजन न कर पाने के कारण पीड़ित भी हुई होगी, किन्तु प्रकृत महाकाव्य एक शास्त्रज्ञ द्वारा रचित होने से सभी मानक निकषों पर पूर्णतः सफल महाकाव्य सिद्ध हुआ है। जिसमें जितनी चतुरता से काव्यांगों का अलंकरण हुआ है उतनी ही सहृदयता से काव्यात्मभूत रस का परिपाक एवं कामरूप फल का निर्वहण हुआ है यदि कोई तत्व छूट भी गया होगा तब भी दण्डी कवि का अधोलिखित वाक्य इसकी महाकव्यता की रक्षा के लिए पर्याप्त है। "नूनमप्यत्रयैः कश्चिदंगैः काव्य न दुष्यति।। (काव्यदर्श)

(ग) रुक्मिणी महाकाव्य का अन्य (रुक्मिणी विवाह परक) ग्रन्थों से तुलनात्मक अनुशीलन--

प्रथम अध्याय में श्रीमद्भागवत पुराण या हरिवंश पुराण में वर्णित रुक्मिणी विवाह से सम्बद्ध काव्यों गीतों नाटकों की समीक्षा की जा चुकी है। प्रकृत में कुछ प्रसिद्ध काव्यों के साथ प्रकृत रुक्मिणी हरणम् महाकाव्य की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत है।

रुक्मिणी विवाह से सम्बद्ध ग्रन्थों में बालकृष्ण भट्ट शेष चिन्तामणि, सरस्वती निवास इन तीन कवियों की "रुक्मिणी परिणय" नाम से तीन रूपकों की रचना, रामवर्म, रमापति उपाध्याय, विश्वेश्वर, आत्रेयवरद्, तार्किक सिंह की भी "रुक्मिणी परिणय" नाम से पाँच नाटकों की रचना बत्सराज कृत ईहामृग, वेंकटम्पति प्रधानीकृत रुक्मिणी स्वयंवर नामक अंक, वि० प० वोकील महोदय रचित "श्रीकृष्ण रुक्मिणीयम्" नाटक, हरिदास सिद्धान्त वागीश हेमचन्द्र राय कृत "रुक्मिणी हरणम्" महाकाव्य बालमुकुन्दभट्ट कृत "रुक्मिणी मंगलम्" महाकाव्य राजचूड़ामणि विरचित "रुक्मिणी महाकाव्य", विश्वनाथ देववर्मा विरचित "कल्याणम्" रुक्मिणी परिणय महाकाव्य तन्जौर नरेश, रघुनाथ कृत "रुक्मिणी विवाह" नृसिंहतात कृत "रुक्मिणी बल्लभ परिणयम्" गोविन्द वाणी विरचित "रुक्मिणी पाणिग्रहणम्" एडावड़ित कोड्माण कृत, नम्बूदरी कृत "रुक्मिणी स्वयंवर प्रबन्ध", गोवर्धन कृत "रुक्मिणी चम्पू" आम्मालवंएकटाचार्य कृत "रुक्मिणी परिणय चम्पू" रामशय कृत "रुक्मिणी परिणय चम्पू" आदि प्रमुख रूप से दृग्गोचरी कृत हुए।

रुक्मिणी विवाह से सम्बद्ध काव्यों में जो उपयुक्त अथवा अन्य भी जो दृश्य काव्य है वे सभी यद्यपि अभिनेय होने के कारण दर्शकों अथवा सहृदय पाठकों को आह्लादित करते है किन्तु कथावस्तु एवं उसकी प्रस्तुति एवं उस काल के वातावरण के प्रतिबिम्बन में समर्थ नहीं हो पाते। प्रकृत प्रकरण हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु श्रीमद्-भागवत

पुराणों में प्राप्त होते है। ये सभी ग्रन्थ प्रमुखतया भागवत पुराण लोक में धार्मिक आस्था से सम्बद्ध चूड़ा का ग्रन्थ है। इसके प्रतिपाद्य देव श्रीकृष्ण लोक में साक्षात् परमात्मा के रूप में स्वीकृत है। यदि रंगमंच पर इनके चरित्र में किंचित भी परिवर्तन करके प्रस्तुत किया जाता है तो प्रेक्षक उसे स्वीकार नहीं क्र्र सकते। उदाहरणस्वरूप-- प्रो० वोकील कृत "श्रीकृष्ण रुक्मिणीयम्" नाटक में कवि ने दर्शाया है कि जब हलधर कुण्डिनपुर पर आक्रमण करते हैं तथा इस प्रयाण में उनकी पत्नी रेवती भी उनके साथ जाती है। इस प्रकार का वर्णन अनुचित एवं अस्वीकारणीय है। साथ ही इतिहास विरूद्ध भी है। इसी प्रकार इस नाटक में भीष्मक कहते है कि कृष्ण एवं शिशुपाल में युद्ध हो, इन दोनों में जो विजयी होगा वही रुक्मिणी का पति होगा, यह कल्पना भी अमर्यादित है। बालाकृष्ण भट्ट कृत "रुक्मिणी हरणम्" नाटक में वर्णित है कि रुक्मि का ब्राह्मण प्रासाद में पहुँचा तब बसन्तक एवं चन्द्रक नामक शिशुपाल के सेवक उस वृद्ध कञ्चुकी से रुक्मिणी के पिता भीष्मक की वैवाहिक इच्छा के विषय में प्रश्न करने लगे जबकि इस प्रकार के प्रश्न करने का अधिकार केवल राजा को ही था। इस गम्भीर प्रकरण में हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा में कवि ने नाटक को ही उपहासनीय बना दिया है।

इसी प्रकार रामवर्मा कृत "रुक्मिणी परिणयम्" नाटक में कुण्डिनराज भीष्मक के अन्तःपुर में उद्धव को सखियों के साथ वार्तालाप करते हुए प्रदर्शित किया गया है। अनेक नाटकों में प्रदर्शित इस प्रकार की विचित्र घटनायें पुराणों में कहीं भी उपलब्ध न होने से अस्वीकृत हुई हैं।

इस प्रकार के अनौचित्य का लेश भी प्रकृत महाकाव्य रुक्मिणी परिणयम् में नही है। जो कुछ कथा विशेष की कल्पना रुक्मिणीहरणम्कार ने कल्पित की है यथा-

रुक्मिणी के प्रासाद में नारद का आगमन [२३२] रुक्मिणी की माता का विप्रलब्धा रुक्मिणी के उपचार की चेष्ठा [२३३] श्रीकृष्ण द्वारा ब्राह्मण सन्देश वाहक से विपरीत वचन बोलना [२३४], सखियों द्वारा रुक्मिणी का उपचार [२३५] आदि प्रकरण कथा की मूल भावना की सज्जा करने के साथ ही नायक नायिका के चरित्र को उदात्त बनाते है।

पं० रमापति उपाध्याय विरचित नाटक में कथा वस्तु के उपस्थापन में किंचिद् भी अनौचित्य नहीं है तथापि प्रकृत महाकाव्य की तुलना में काव्यत्व एवं रसपरिपाक अति न्यून है। साहित्यक दृष्टि से "रुक्मिणी हरणम्" उपर्युक्त रूपकों से कहीं अधिक उन्नत है।

श्रव्य काव्यों में विश्वनाथ शर्मा कृत "रुक्मिणी परिणयम्" महाकाव्य में वर्णित है कि भीष्मक ने श्रीकृष्ण से रुक्मिणी के साथ विवाह की इच्छा व्यक्त की, किन्तु रुक्मि ने जब इसका विरोध करते हुए शिशुपाल से विवाह का प्रस्ताव किया तब भी भीष्मक ने उसे पुत्री की सुख की चिन्ता न करते हुए स्वीकार कर लिया। रुक्मिणी की माता भी पुत्र के प्रस्ताव से सहमत हो जाती है। माता पिता के लिए यह कथमपि उचित नहीं माना जा सकता। इस महाकाव्य के माता-पिता पुत्री को दुख दावानल में दग्ध करने को तैयार प्रदर्शित किये गये है। सुधानिधि के कविनिबद्ध माता पिता इसके विपरीत दृष्टिगोचर होते हैं। [२३६] यह बात भिन्न है कि रुक्मि हठात माता पिता की इच्छा के विरूद्ध रुक्मिणी

२३२- रु० ह० सर्ग- २/१-७,

२३३- रु० ह० सर्ग-३/ ५२-५७

२३४- रु० ह० सर्ग ११/४८-६८

२३५- रु० ह० सर्ग -७/ ५-१११

२३६- रु० ह० सर्ग ८ /२८-६७, १६/१५-३७

को शिशुपाल को देने को उद्यत था। भीष्मक ने श्रीकृष्ण को देखकर वही रुक्मिणी के अनुरूप पति हैं यह प्रकार अन्तर से व्यक्त किया। (२३७)

डा० कैलाश नाथ द्विवेदी का अभिमत है कि महाकवि माघ के शिशुपाल वध की प्रतिछाया रुक्मिणी हरणम् के अनेक स्थलों पर पड़ी है, जो भाव साम्य पूर्ण प्रकृति चित्रण के अनेक पदों की तुलना से स्वतः स्पष्ट होती है। (२३८) रुक्मिणी हरणम् महाकाव्य की नायिका शिशुपाल से अपने विवाह की वार्ता सुनकर दुखी होकर सखी से प्रार्थना करती है कि किसी समुचित ब्राह्मण दूत को बुलाओ जो मेरा संदेश श्रीकृष्ण तक ले जाये, प्रकृत महाकाव्य में रुक्मिणी अपनी मनोव्यथा को निगूढ़ रखते हुए स्वतः समागत ब्राह्मण दूत को पत्र देकर भेजती हैं। इस प्रकरण में कवि ने रुक्मिणी के गौरव को पूर्ण सुरक्षित रखा है। वह केवल दूत से ही अपनी व्यथा कहतीं है। (२३९)

मामेष दित्सति पिता मधुसूदनाय, स्वा चेतनामिव यतिः पुरुषोत्तमाय।
आबध्य मानसमिवाविरत। यमाय, तामग्रजस्तु दमघोषसुताय दत्ते।।
(रु० ह० ९/२३)

रुक्मिणी परिणय की तुलना में "रुक्मिणी हरणम्" अनेक प्रकरणों में अतिशायी है।

हेमचन्द्र गाय कृत "रुक्मिणी हरणम्" महाकाव्य में साहित्यक परिपक्वता होते हुए भी अनौचित्य दृष्टिगोचर होता है। यथा- एक दिन कृष्ण को सूचना मिली कि लोक

२३७- रु० ह० सर्ग १६/६३
२३८- द्रृ० लेखा० डा० कैलाशनाथ द्विवेदी, रुक्मिणीहरणेमाघ्धास्य प्रतिच्छित, सुधी सुधासिधे काव्य वैशिष्टयच्च शीर्षक लेख साहित्यशाला, कानपुर १९९२ वृ० १२५-१३०
२३९- रु० ह० ९/२०-२७

में यह अपवाद है कि कृष्ण जरासन्ध के भय समुद्र के बीच में छिपे हुए हैं। इस सूचना से कृष्ण दुखी हुए। इस प्रकार का दुख कृष्ण के व्यक्तित्व पर सर्वथा प्रतिकूल है।

सुधानिधि जी के श्रीकृष्ण के द्वारका की प्रजा उनसे अत्यन्त सन्तुष्ट प्रसन्न एवं निर्भीक है [२४०] और कृष्ण परम प्रसन्नता से वहाँ शासन करते थे। ब्राह्मण दौत्य के प्रकरण में उन्होंने राजनीति, धर्मनीति एवं लोक मर्यादा को ध्यान में रखते हुए ब्राह्मण दूत को प्रथमतः कुण्डिनपुर जाने के पक्ष में तर्क दिये [२४१] किन्तु जब कृष्ण ने उन्हें धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कुण्डिनपुर जाना आवश्यक बताया तब उन्होंने जाना स्वीकार कर लिया [२४२] इस महत्व पूर्ण प्रकरण को सुधानिधि जी ने अत्यन्त तर्क संगत एवं मर्मस्पर्शी बना दिया है।

हेमचन्द्र राय कृत महाकाव्य में नारद कृष्ण के पास जाकर केवल रुक्मिणी से विवाह की प्रार्थना करते हैं।

सुधी सुधानिधि जी के महाकाव्य में नारद ने कुण्डिनपुर में ही भीष्मक की चिन्ता देखकर कृष्ण की प्रशंसा करते हुए रुक्मिणी के दान की प्रेरणा देते हैं। [२४३] रुक्मिणी का वर के निर्देश करने के लिए स्वयं भीष्मक ने ही प्रश्न किया था।

सौभाग्यमादिष्टमथानुरूपं, वरं च में निर्दिशं कन्यकायै।
आकर्ण्यते यद्भवतः कृपालो, जगत्रयी पर्यटनानुरागः।। (रु० ह० २/३१)

रुक्मिणी हरण के भीष्मक आदर्श पिता के रूप में उपवरा कन्या के विवाह

२४०- रु० ह० १०/७५-११८

२४१- रु० ह० ११/५०-६८

२४२- रु० ह० १२/ १-१३५

२४३- रु० ह० २/३२-१३८

के लिए चिन्तित वर्णित है [२४४] यह प्रकरण लोकानुकूल एवं स्वाभाविक प्रतीत होता है किन्तु हेमचन्द्र राय के महाकाव्य में इस प्रकरण का वर्णन नहीं है।

इस प्रकार हेमचन्द्र राय का महाकाव्य सुधीसुधानिधि की कृति के समक्ष अस्त अथवा श्री हीन सा दिखाई देता है।

महाकवि काशीनाथ, सुधी सुधानिधि की इस दैदीप्यमान कृति के सम्मुख केवल हरिदास कृत "रुक्मिणी हरणम्" महाकाव्य ही स्थान पाने योग्य है। दोनों ही महाकाव्यों की कथा योजना, कल्पना प्रवणता, साहित्यक अभिव्यक्ति, छन्दोविच्छन्दि, अलंकार संयोजन अद्‌भुत हैं। इनमें किसी को भी श्रेष्ट अवर नहीं कहा जा सकता दोनों महाकाव्य सर्वांगपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त रामचूड़ामणि कृत "रुक्मिणी मंगलम" महाकाव्य को ले सकते है किन्तु यह महाकाव्य दुर्भाग्य से अपूर्ण प्राप्त है। [२४५]

यह महाकाव्य यद्यपि साहित्यक दृष्टि से सम्यक् परिपक्व है किन्तु कथा प्रवाह अत्यन्त शिथिल रहा है। परिणामतः मदनोपालम्भ पवनोपालम्भ चन्द्रोपालम्भ आदि के विस्तार में पाठक कथा से दूर हो जाते हैं। अतः यह महाकाव्य भी प्रकृत महाकाव्य की तुलना में हेय है। काशीनाथ जी ने इन प्रकरणों का वर्णन समुचित स्थल पर ही किया है जिससे कथा प्रवाह अक्षुण्ण रहता है। कामोपालम्भ षड्ऋतृ सात्विक भावों रजनी आदि का वर्णन रुक्मिणी के रागावेश वर्णन प्रसंग में ही कर दिया है [२४६] उसके पश्चात इन प्रकरणों को बीच में ही नहीं स्थान दिया अपितु अन्य प्रकरण जैसे सागर, वन, पर्वत,

२४४- रु० ह० २/१५-१३

२४५- विवरण प्रथम अध्याय में किया जा चुका है।

२४६- रु० ह० सर्ग ३-७

पुर आदि के वर्णनों को ही यथा प्रसंग कथा के रूप में वर्णित किया है। [२४७]

बालमुकुन्द भट्ट कृत "रुक्मिणी मंगलम्" महाकाव्य के कथा वितान से प्रकृत महाकाव्य का कुछ साम्य है यथा रुक्मिणी एवं कृष्ण के परस्पर राग को उत्थापित करने के लिए नारद की उपस्थिति की कल्पना किन्तु उसमें भी काशीनाथ जी अधिक सावधान दृष्टिगोचर होते हैं, उन्होंने मात्र भीष्मक के पुर में ही नारद की उपस्थिति दिखाई हैं, कृष्ण की मर्यादा पूर्ण रूप से सुरक्षित रखी है जिसका दर्शन १०-११ वें सर्ग में होता है।

साहित्यक दृष्टि से "रुक्मिणी मंगलम्" प्रकृत महाकाव्य की तुलना में अत्यन्त हीन है क्योंकि उसकी भाषा तक असाधु है।

समीक्षाः-

उपरिवर्णित साहित्यक ग्रन्थों से रुक्मिणी हरण की तुलना करने पर काशीनाथ सुधानिधि की लेखनी की विदग्धता, सूक्ष्मता एवं तीक्ष्णता अधिक स्पष्ट होती है। यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि पिछली ३ शतियों में विरचित रुक्मिणी विवाह के आधार पर विरचित महाकाव्यों में रुक्मिणी हरणम् सर्वोत्कृष्ट रचना है एवं २० वीं शती के लेखकों के लिए मानक भूत, अप्रतिम और आदर्श महाकाव्य है। साहित्य शास्त्रीय, भाषा शास्त्रीय एवं विविध शास्त्रीय ज्ञान के सात्विक अनुशीलन की दृष्टि से यह महाकाव्य व्यापक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से इस महाकाव्य की प्रासंगिकता, महत्ता और उपदेयता और अधिक है।

२४७- रु० ह० सर्ग ६, २०, १३, १६ आदि

षष्टम

अध्याय

अध्याय षष्ठम्

पुराण साहित्य की दृष्टि से रुक्मिणी हरण महाकाव्य का सांस्कृतिक अध्ययन -

भारतीय पुराण, साहित्य सुहृत्सम्मित शैली में रचित भारतीय संस्कृति के विश्वकोश हैं। इस विशाल साहित्य का अनुशीलन प्रत्येक क्षेत्र के अधिकारी विद्वान अपने विषय को प्रामाणिक एवं प्रासंगिक बनाने के लिए करते हैं। कवि काव्य सामग्री का, इतिहास विद् ऐतिहासिक तत्वों का, कला प्रेमी स्थापत्य शिल्प आदि का खगोल विद् नक्षत्रगति का, नीतिशास्त्री नैतिकता से भरी कथाओं का, अर्थशास्त्री राजनैतिक सिद्धान्तों का, आचार शास्त्री स्वस्थवृत्त का अध्ययन करते हुए पुराणों पर आश्रित होता है।

लोकरंजन के प्रमुख साधन काव्य में लोक का प्रतिबिम्बन परमावश्यक तत्व होता है। लोक के प्रतिबिम्बन में सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ ही प्रमुख उपकरण होती हैं। इस दृष्टि से कोई भी रचना यद्यपि प्राचीन परिवेश को आधार बनाकर आरम्भ होती है किन्तु उसमें वर्तमान समसामयिक लोक की अपेक्षाएँ स्वतः ही प्रतिबिम्बित होने लगती हैं।

आलोच्यमान महाकाव्य श्रीकृष्ण के युग की घटना को आधार बनाकर रचा गया है, अतः स्वाभाविक रूप से इसके वर्णनों में द्वापर के परिपेश का ही वर्णन है, किन्तु जिन पुराणों को आधार बनाकर इस महाकाव्य की रचना की गई है, उसमें प्राप्त सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करते हुए कवि ने समसामयिक अपेक्षाओं को अत्यन्त सहज रीति से स्थान दिया है।

प्रकृत महाकाव्य रूप से हरिवंश पुराणों में संरक्षित कथा के श्रीमद्भागवत पुराण की परिष्कृत कथा पर आधारित है। कवि ने कथा एवं संस्कृति की मर्यादा को

सुरक्षित रखते हुए उर्पयुक्त दोनों पुराणों का सम्यक् पर्यालोचन करके महाकाव्य की रचना की है।

रुक्मिणी का विवाह द्वापर की एक महत्वपूर्ण राजनैतिक घटना थी, जिसमें प्रमुख कण्टक भीष्मक का पुत्र रुक्मि था। श्रीमद्भागवत में भीष्मक के पाँच पुत्रों का वर्णन है।[२४८] प्रकृत प्रकरण में पिता-पुत्र के सम्बन्ध में मधुरता का अभाव है। अतः सामाजिक दृष्टि से यह प्रश्न स्वाभाविक था कि मात्र रुक्मि के विरोध के आगे भीष्मक को क्यों झुकना पड़ा, जबकि वे अन्य चार पुत्रों की सहायता से अपनी आज्ञा का पालन करा सकते थे। "सुधानिधि" जी ने महाकाव्यारम्भ करते हुए भीष्मक के पुत्रों का कोई विवरण नहीं दिया है। वे आगे भी मूक रहे हैं। अतः रुक्मि के कटु विरोध का उत्थापन करते समय भीष्मक की असहाय अवस्था स्वाभाविक प्रतीत होती है। द्वापर युग भी मदान्ध राजाओं का युग था एवं महाभारत जैसे महायुद्ध का साक्षी भी। इसलिए रुक्मि का जरासंधादि की मैत्री के कारण मदान्ध होना एक सहज प्रक्रिया थी।

इत्येव ब्रुवतस्तस्य समुत्तस्थौ निजासनात्,
भ्रुवोः कौटिल्यमापाद्य रुक्मी कुञ्चित लोचनः।
स्वभावात्पक्षपातित्वं विपक्षाणां मधुद्विषः,
मनो हि नयते नृणां प्रवुद्धो राजसो मदः।। (रु० ह० ८/१०१-१०२)

ये वाक्य पिता-पुत्र के कटु सम्बन्ध के समर्थन में संकेत उपस्थित करते हैं। रुक्मि स्वभाव से ही कृष्ण के विरोधियों का पक्षपाती था, इतना कहकर ही कवि आगे बढ़ गये है तथा उन कारणों के अन्वेषण के लिए पौराणिक साक्ष्य का द्वार दिखा दिया है।

श्रीमद्भागवत एवं हरिवंश दोनों में रुक्मि के विरोध का राजनैतिक एवं

२४८- श्रीमद्भागवत पुराण १०/५०

सामाजिक कारण स्पष्ट है। [२५०] रुक्मि के पितृ द्रोह को प्रकृत महाकाव्य में समसामयिक बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

अयंव्येकः परोवाग्मी परे मौनाबलाम्बिनः।

वाचालत्वेन लोकानां प्रधानत्वं प्रवर्धते।। (रु० ह० ८/१०६)

चक्षुर्म्यां शक्तिहीनाभ्यां सहेव बहुशः श्रुतम्।

मति पश्यति नो दृश्यं वृद्धानां षष्टि हायनी।। (रु० ह० ८/१०६)

इन वाक्यों में दुष्ट पुत्रों के पिता के प्रति आधुनिक मान्यताओं की झलक मिलती है 'षष्टिहायनी' पद से आधुनिक सठियाने की अभिव्यक्ति दी गई है।

दूसरी ओर पुत्री एवं माता क स्नेह निबन्धन का वर्णन केवल समसामयिक मान्यता के आधार पर है पुराणों में रुक्मिणी की माता के प्रसंग का अभाव है।

भाई बहिन के स्नेह के विषय में पौराणिक संस्कृति की झलक इस महाकाव्य में दृष्टिगोचर होती है। रुक्मि भले ही कृष्ण का द्रोही था। [२५०] परन्तु बहिन के लिए उसने अपनी दृष्टि से उपयुक्त वर का प्रस्ताव किया था। [२५१] अतः ऐसा नहीं कहा जा सकता कि रुक्मि को बहिन के सुख एवं अभिरूप पति की चिन्ता नहीं थी। विशेषतः निम्न श्लोक दृष्टव्य है-

एवं विधस्य तस्यैतां रुक्मिणीं कन्यकोत्तमाम्।

मागं कण्ठीरवेन्द्रस्य श्रृंगाल इव को हरेत्।। (रु० ह० ७८/१३६)

एंव च स्वमतेर्मर्म मा यूयं प्रकाशयत बालिशाः।।

अहं ददामि तां तस्मै चित्रां दक्ष इवेन्दवे।। (रु० ह० ८/१३८)

२४६- देवी भागवत १०/५२/२५, हरिवंश - ८७/१३

२५०- रु० ह० ८/१०२

२५१- रु० ह० ८/११०-१५६

इन वाक्यों में रुक्मी की चिन्ता अग्नि के प्रति स्पष्ट प्रतीत होती है। इस प्रकार परिवारिक संस्कृति के समसामयिक प्रतिबिम्बन में कवि ने कहीं पुराणों से हटकर भी रचना की है, क्योंकि हरिवंश एवं भागवत में रुक्मि के विरोध का कारण जरासन्ध का उस पर प्रभाव था।[२५२]

पौराणिक संस्कृति में कन्या के स्वयंवर की अवधारणा थी एवं हरिवंश पुराण में रुक्मिणी के स्वयंवर के आयोजन का वर्णन भी है जो कृष्ण के आगमन एवं जरासंधादि की दुर्नीति के कारण स्थगित हो गया था।[२५३] भागवतकार ने रुक्मिणी स्वयंवर के आयोजन को सम्भवतः अमर्यादित माना था अतः कृष्ण एवं रुक्मिणी के स्वतः परस्पर अनुराग को वर्णित किया।

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः।
गृहागतैर्गीय माना तं मेने सदृशं पतिम्।। (भा० १०/१५२/३७)

रुक्मिणी अनेक लोगों से कृष्ण के गुणों को सुनकर उन पर आकृष्ट हुई थी यह भागवतकार का वचन है। कृष्ण की पट्ट महिषी की महत्ता के लिए यह वर्णन कुछ असंगत सा प्रतीत हुआ कवि को। अतः उन्होंने एक प्रामाणिक अतिथि नारद के आगमन को माध्यम बनाया एवं वासुदेव की भगवत्ता का वर्णन उन्हीं के मुख से कराया।[२५४] क्योंकि भागवत एवं महाकाव्य में नायिका को लक्ष्मी का अवतार माना गया है।[२५५] अतः इन दोनों के विवाह का उपक्रम सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकृत विवाह पद्धति से ही वर्णित

२५२- हरिवंश ८७/२४

२५३- दृ० हरिवंश, विष्णुपर्व

२५४- रु० ह० सर्ग २

२५५- भवने किल तस्य रुक्मिर्णा त्यवतीर्णा स्वयमिन्दिराभवत्।।
देवीभागवत १०/५२, रु० ह० १/३

करना उचित था। भागवतकार के अनुसार रुक्मिणी के प्रस्ताव का प्रमुख वाक्य इस प्रकार था-

निर्मध्य चैद्य मगधेन्द्र बलं प्रसहय मां।

राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम्।। (भा० १०/५२/४१)

हरिवंश पुराण के अनुसार इन्द्राणी पूजा के अवसर पर रुक्मिणी को देखकर कृष्ण ने मुग्ध होकर उसका हरण कर लिया था। [२५६] भागवतकार ने रुक्मिणी के वचन को प्रकृत महाकाव्य में कवि ने सांस्कृतिक मर्यादा की समसामयिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए रुक्मिणी के पिता भीष्मक के मुख से इस प्रकार कहलाया है। भीष्मक अपना सभा में अमात्यों के मध्य कृष्ण का प्रस्ताव करते हुए कहते हैं।

एक एवानुरूपोडसौ वरो जगति लभ्यते।

मान्यो यदुप्रवीराणां नेता कंसनिषदूनः।।

पूर्व परीक्ष्यताः तस्य नृसिंहस्य पराक्रमाः।

क्षत्रियाणां श्रुता लोके वीर्यशुल्का हि कन्यकाः।। (रू० ह० ८ /४६-६७)

इस प्रकार प्राचीन पौराणिक संस्कृति का स्मरण भी यथावसर हो गया एवं रुक्मिणी के मुख से इस वाक्य के प्रयोग को भी बचा लिया गया। भागवतकार भी कृष्ण रुक्मिणी विवाह को राक्षस विवाह की संज्ञा देते हैं। [२५७] राक्षस विवाह पद्धति को मनु ने क्षत्रियों के लिए उचित भी माना है किन्तु वर्तमान सांस्कृतिक परिवेश में इसका औचित्य प्रतिपादन दुष्कर है। अतः कवि ने रुक्मिणी के प्रस्ताव को इस पराकार ब्राह्मण ने अपनी ओर से जो वचन कहे वे पूर्ण रूप से प्राचीन सांस्कृतिक मर्यादा में बंधे हुए

२५६- हरि० वि० प० ८८

२५७- द्र० मा० १०/५२/४१, ५४/१८

होने पर भी समसामयिक संस्कृति के लिए अनुकूल थे। उदाहरणार्थ -

असौभवत्पाद रजोऽनुरागिणी, महात्मना ते जनकेन दिप्सता।
न सोदरस्तत्सहते जहाति नो, नृणां हि तारूण्य मदूरदर्शिता।।
अपि च कथं परस्मिन पुरूषेऽनुरागिणी, नरं कुमारी कुलजेतरं ब्रजेत्।।
दिवाकरं शीतजडाडपि नेक्षते, लभते, नो वा रजनी दिवाकरम्।।
(रु० ह० ८ /३४,३६)

इसके साथ ब्राह्मण ने कृष्ण को रुक्मिणी का पत्र दे दिया। पत्र की शब्दावली को भागवतकार ने उद्घाटित किया है किन्तु महाकाव्यकार ने उसे उद्घाटित नहीं किया।

सुवर्णतन्तु ग्रथितं रसोत्बणं, यथार्थवादाम्बु निषेक शीतलम्।
इदं मनोभृगं मनोहरं वया, हृदुद्गतं दाम मनोपदा कृतम्।।
(रु० ह० ८ /३६)

महाकाव्यकार आधुनिक संस्कृति में योगितम मिथुनों को भी राक्षस विवाह की प्रेरणा नहीं देना चाहते थे। अतः उन्होंने श्रीकृष्ण के मुख से अनेक वाक्यों में रुक्मिणी के प्रस्ताव का प्रतिषेध कराया है। उदाहरणार्थ--

अयत्नलब्धे दमघोषनन्दने, कुतो न सा नन्दति भूपनन्दिनी।
श्रमं बिना पाणितलं गते ध्रुवं, न दुर्लभेऽर्थेऽपि मनः प्रसीदति।।
(रु०ह० ११/५६)
अबोधमुग्धाह्लदयस्य कल्पना, विनाशने नो सुकृतस्य कल्पते।
प्रतिक्षणं केवलबाल चापलान्, नवे नवे वस्तुनि यस्य रागिता।।
(रु०ह० ११/५८)

इस प्रकार के अनेक विपरीत तर्कों को सुनकर दूत की यह स्थिति बनी--

संसिद्धचै नृपदुहितुर्मनोरथाना, मुच्छेन्तुं युगजनितं कुतर्कजातम्।

वैदिष्यं तदनु विनीतमप्यमुष्य, सौत्युक्यं त्वरिततमं बभारदर्पण्।।

(रु० ह० ११/१०१)

इस प्रकार सांस्कृतिक मर्यादा की सुरक्षा कवि ने की है। रुक्मिणी से विवाह के लिए ब्राह्मण ने जिन वाक्यों से कृष्ण को प्रेरित किया है वे वाक्य भी अनूठे हैं। यथा--

प्रयोजनं प्रेम परं परस्परं, गृहस्थ धर्माचरणं तथा निशम्।

पशुप्रवृत्तृत्तेः परितृप्तिरेव चेत्, फलं बृथा तर्हि विवाहबन्धनम्।।

(रु०ह० १२/११६)

सृतौमदेकं भवति स्वमात्मनम्, तदद्वितीयं ममताऽऽ स्पदं नृणाम।

अबाधलभ्ये पुरूषान्तरे ततो, धवे भवेत्का प्रियका नु योपिताम्।।

(रु०ह० १२/११७)

अनेक मार्मिक धर्म व्याख्या के पश्चात ब्राहमण कहता है--

चकोरबालेव समुत्सुका त्वयि, ममास्ति व त्साऽथ तथा तथापि चेत्।

न लप्स्यते त्व न्मुख चन्द्र चन्द्रिका, ततोऽनलं सा शरणी करिष्यति।।

(रू०ह० १२२ /१३३)

इस प्रकार श्रीकृष्ण रुक्मिणी के प्रेम की रक्षा के लिए विवश थे, साथ ही भीष्मक की इच्छानुसार ही वे रुक्मिणी का पाणिग्रहण करेगें यह भी लेखक ने सुस्थापित कर दिया है।

इस प्रकार रुक्मिणी विवाह की सांस्कृतिक मर्यादा को कवि ने सतर्कों से उचित प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त की है।

पौराणिक साहित्य में विष्णु के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण का वर्णन है। साथ ही अनेक पुराणों में विष्णु एवं शिव की परस्पर आराधना की चर्चा भी है। वैष्णव एवं

शैव संप्रदायों में कट्टरता के समावेश के पश्चात मध्य युगीन अनेक साहित्यों में शैवों एवं वैष्णवों का द्रोह प्रदर्शित किया गया है।

पुराण वस्तुतः स्मार्त धर्म के प्रवर्तक है। यह साहित्य में ब्रह्म के पंचदेव के विग्रह के रूप में उपासना का निर्देश है। जिनमें सूर्य गणपति शिव विष्णु एवं शक्ति की परिगणना होती है। प्रत्येक देव स्वयं में पूर्ण ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। किसी में भी प्रथमावरत्व नहीं है। कवि ने मध्यकाल में व्याप्त सांस्कृतिक मतभेद को बड़ी सफलता से प्रस्तुत महाकाव्य में दूर करने की चेष्टा की है।

द्वितीय सर्ग में नारद ने भागवत में वर्णित सभी अवतारों एवं कृष्ण चरित्र का बखान किया है। ८ वें सर्ग में भीष्मक ने भी श्रीकृष्ण के आह्निकचर्या वर्णन के प्रसंग में अनेक द्वारा शिवपूजन एवं शिव की स्तुति का मनोरम वर्णन किया है।

समीक्षा :-

इस प्रकार एक ओर कृष्ण को विष्णु रूप एवं दूसरी और शिवपूजक बताना धार्मिक एवं सांस्कृतिक, सामञ्जस्य, सहिष्णुता तथा एकत्व का द्योतक है। भारतीय संस्कृति पर आधृत आचार-विचार, पूजा, अर्चना, उपासना आदि विविध व्यापक तत्वों का प्रभावी काव्यात्मक विवेचन रूक्मिणी हरण महाकाव्य का मौलिक काव्य वैशिष्ट्य है। इसमें मानव समाज का उद्दान्त जीवन दर्पण भी व्याख्यायित एवं निरूपित है। अतः अनुसन्धानात्मक अनुशीलन की दृष्टि से इस महाकाव्य की प्रासंगिकता एवं समीचीनता और बढ़ जाती है। अतः अध्येताओं को इमदाराज्य का व्यापक शोधपूर्ण अध्ययन, मनन एवं चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

उपसंहार

उपसंहार

शोध निष्कर्षों का निरूपण -

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का आधार ग्रन्थ "रुक्मिणी हरणम्" महाकाव्य की रचना संस्कृत साहित्य एवं साहित्य शास्त्र के पूर्व उत्कर्ष एवं मन्थन का काल समाप्त हो जाने के पश्चात हुआ है। वस्तुतः संस्कृत साहित्य काव्य के अंगोपांग ने आत्मा अलंकारणादि के सुपर्याप्त लक्षणों की उपलब्धि के अनन्तर उत्कृष्ठ महाकाव्यों के प्रकाश में आने की संभावना अधिक प्रबल हो जाती है, किन्तु २०वीं शती में जो संस्कृत के महाकाव्य प्रकाश में आये हैं, उनकी संख्या अधिक होते हुए भी गुणवत्ता अधिक नहीं कही जा सकती।

संस्कृत काव्यों के सुदीर्घ परम्परा का एवं उसके शास्त्रीय पक्ष में हुए मंथन का पर्यालोचन प्रथम अध्याय का प्रथम विषय रहा है। इस साहित्यक पर्यालोचन से स्पष्ट है कि पारम्परिक महाकवियों के काल में भावकगण या साहित्य शास्त्रीगण जिन ग्रन्थों की उत्तमता से आश्वस्त थे, उन्हीं को लक्ष्य रूप में स्वाकीर किया, उन्हीं के उदाहरणों से अपने लक्ष्यों को संपुष्ट किया तथा उन्हीं कवियों को महत्व दिया। अतः जो कवि संस्कृत वाङमय में प्रतिष्ठित हुए एवं महाकवि के रूप में विख्यात बने उनकी रचनायें आज भी साहित्य की धरोहर के रूप में सुरक्षित हैं।

पण्डित राज जगन्नाथ एवं अप्पय दीक्षित के पश्चात गम्भीर साहित्यक समालोचना में अवरोध हुआ। कविराज विश्वनाथ के साहित्य दर्पण तक ही काव्य विषयक भावुकता आज भी सीमित है। फलतः २० वीं शती तक आते आते काव्यों की भावुकता ने अपना मौलिक एवं शास्त्रीय स्वरूप धूमिल, विलुप्त और विस्मृत सा कर दिया। यद्यपि लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित संस्कृत साहित्य की एक सुदीर्घ श्रंखला प्राप्त है, किन्तु उनकी साहित्यक गुणवत्ता के उत्कर्ष को प्रामाणिक रीति

से प्रतिष्ठित करने के लिए पृथक लेख या शोध ग्रन्थ की आवश्यकता का अनुभव होता है।

प्रथम अध्याय में ही यह सिद्ध किया जा चुका है कि श्रीकृष्ण-रुक्मिणी विवाह से सम्बन्धित सरस कथा को आश्रय बनाकर नाटक ईहामृग चम्पू महाकाव्य गीतकाव्य आदि अनेक विधाओं में साहित्य का सृजन होता रहा। प्रत्येक कवि ने कथा को अपनी कल्पना के अनुरूप बनाने का प्रत्यन किया एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ दी। लक्षण ग्रन्थों की परम्परा के ह्रास के कारण उनमें प्राप्त नवीनताओं का विश्लेषण अथवा पर्याकलन करना कठिन है।

यद्यपि आधुनिक संस्कृत विद्वानों ने भी लक्षण ग्रन्थों के निर्माण की समीचीन चेष्ठा की है, तथापि उन ग्रन्थों की अपूर्णयता एवं अपरिपक्वता के कारण उन्हें अभी यथेष्ठ साहित्यिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई है। अतः काव्यानुशीलन का आधार आज भी प्राचीन आचार्यों राजशेखर कृत काव्य मीमांशा, मम्मट कृत काव्य प्रकाश तथा कविराज विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण ही स्वीकृत है।

प्राचीन काल में संस्कृत प्रेमी गुप्त साम्राटों के उत्कर्ष के साथ भागवत धर्म का उत्थान प्रखरता के साथ हुआ जिसका पर्यावसान वैष्णव भक्ति-सम्प्रदाय में हुआ। इस भागवत धर्म का प्रभाव सम्पूर्ण भारतवर्ष के साथ ही निर्भीयमान साहित्य पर भी पड़ा। फलतः यशस्वी रससिद्ध महाकवियों की लेखनी से ऐसे अनेक महाकाव्यों, दृश्यकाव्यों एवं गीतिकाव्यों की एक ऐसी श्रृंखला ने जन्म लिया, जिसके नायक राम, कृष्ण आदि परमात्मभूत वैष्णव लोक नायक हैं। यह परम्परा २०वीं शती में भी टूटी नहीं है। इसका कारण सम्भवतः यह भी हो सकता है कि वर्तमान में संस्कृत साहित्य सृजन की दो विधायें जन्मीं हैं। प्रथम- जो पारम्परिक विद्वान रचनाकार थे, उनकी काव्य प्रतिभाऐं- पारम्परिक काव्य शैली की रचनाएँ प्रादुर्भूत हुई। द्वितीय- जिन संस्कृत साहित्य सृजकों

ने आधुनिक शैली में संस्कृत का अध्ययन कर उन्होंने काव्य प्रतिभा का उपयोग अंग्रेजी कविताओं की शैली में काव्य में संस्कृत का अध्ययन कर उन्होंने काव्य प्रतिभा का उपयोग अंग्रेजी कविताओं की शैली में काव्य निर्माण में किया।

हमारे विवेच्य महाकाव्य पं० काशीनाथ, सुधीसुधानिधि प्रथम वर्ग के पारम्परिक विद्वान रचनाकार हैं। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण काव्य परम्परा में प्राचीन शैली में रचित अत्यन्त सुन्दर प्रयोगों एवं कल्पनाओं से परिपूर्ण इस अदुभुत ग्रन्थ रत्न की रचना की है।

"रुक्मिणी हरणम्" महाकाव्य का कथानक यद्यपि पौराणिक, सामाजिक एवं लोकविश्व राजनैतिक सूचनाओं से परिपूर्ण था किन्तु महाकवि ने उसके सरस पक्ष को प्रधानता से ग्रहण किया है एवं उसी को काव्य मण्डित कर पल्लवित-पुष्पित किया है। इसे अधिक समृद्ध करने के लिए नारद, भीष्मक, ब्राह्मण दूत कृष्ण की आहनिकचर्या एवं शिव स्तुति आदि रोचक प्रसंगो में भारतीय संस्कृति एवं लोक प्रचलित सांस्कृतिक मान्यताओं की स्थापना दृढ़ता से की है, जो आज के युग के लिए परम उपयोगी है।

श्रीमद्भागवत की लोक विश्रत कथाओं को ही इस महाकाव्य का मूल आधार बनाया गया है, तथापि इस कथा का मूल ऐतिहासिक स्वरूप सम्भवतः हरिवंश पुराण में ही प्रथमतः प्राप्त है। श्रीमद्-भागवत पुराण में हरिवंश की सरस कथा को किस प्रकार मर्यादित कर युगानूकूल बनाने की चेष्ठा की है, इसका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय में विस्तार से किया गया है। अन्य पुराणों में विशेषतः ब्रह्म एवं विष्णु पुराण में कथा को मात्र ११ श्लोकों में संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय विवेच्य विषय रुक्मिणी विवाह से सम्बन्धित साहित्य के अनुशीलन पर केन्द्रित है। प्रधान रूप से १७वीं शती ई० से इस विषय पर काव्य रचना की परम्परा का उदय होता है, २०वीं शती ई० में तथा १९वीं शती ई० में इस विषय

पर उत्तर तथा दक्षिण भारत के अनेक साहित्यक विद्वानों ने इस कथा के सांस्कृतिक एवं साहित्यक महत्व को आंका है तथा नाटक, चम्पू गीत काव्य महाकाव्यों की रचनाऐं की हैं। रुक्मिणी-कृष्ण विवाह की कथा का महत्वपूर्ण पक्ष है - प्रेम विवाह।

प्रेमी प्रेमिका एक दूसरे से विवाह करने के लिए सम्पूर्ण समाज से विद्रोह भी कर सकते है तथा उन्हें उचित सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त हो सकती है।

पौराणिक सरस आख्यान का सम्यक् परिकलन एवं प्रतिष्ठापन अर्वाचीन संस्कृत कवियों ने किया है। जिसमें पं० काशीनाथ शर्मा, सुधीसुधानिधि मूर्घात्त और उल्लेखनीय है।

श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी के प्रेम सम्बन्धों को पुष्ट करने के लिए भागवतकार ने ब्राह्मण दूत का उपस्थापन किया, किन्तु परवर्ती संस्कृत कवियों ने उसे और आगे बढ़ाकर पल्लवित-पुष्पित किया तथा रुक्मिणी हरण के पूर्व नायक-नायिका दोनों के वाटिका में मिलन तक की कल्पनायें कर लीं।

रुक्मिणी हरण विषयक कथा के निकास का मुख्य कारण कृष्ण एवं रुक्मिणी के परस्पर राग का पोषण ही प्रतीत होता है।

साहित्य शास्त्र की दृष्टि से प्रकृत महाकाव्य उत्तमता के सभी मानकों पर खरा है। सुधीसुधानिधि जी के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं अभिव्यक्ति की क्षमता का प्रत्येक श्लोक में प्रमाण प्राप्त होता है। सुव्यवस्थित छन्दों, अलंकार संयोजन, उत्तम मात्र व्यंजनाऐं, प्रभावी रसाभिव्यक्ति, सुकुमार पद समन्वित शब्द शैया कथा की मर्यादा एवं परिपूर्ण महाकाव्यात्मक इस ग्रन्थ की प्रमुख साहित्य सम्पत्ति है। १७ वीं शती से अब तक रचे गये रुक्मिणी विवाह से सम्बन्धित संस्कृत काव्यों में एक दो ही ऐसे हैं, जो इस अप्रतिम महाकाव्य की तुलना में टिक सकते हैं, अन्य सभी अर्वाचीन कवि इस कृति के समक्ष बौने प्रतीत होते हैं। इसका अनुसन्धानात्मक विवेचन अध्याय पंचम में विस्तार से

किया गया हैं। महान भारतीय संस्कृति समाज, संयुक्त परिवार एवं संयुक्त विश्व के उदन्त सिद्धान्त की पोषिका रही है। उसकी इस मर्यादा को कवि ने कितनी सावधानी से प्रतिपादित किया है। इसका विवेचन अपरिहार्य मानकर अतः षष्ठ अध्याय को इसी शोधपूर्ण विवेचन के लिए समाहित कर दिया गया है।

भारतीयता का आदर करने वाले कविवर भारतीय संस्कृति के पक्षापाती रहे है जिसका समर्पण हम इनकी रचना के माध्यम से ही कर सकते है। इनके महाकाव्य के द्वारा यह ज्ञात होता है कि उस समय समाज में क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्ण माने जाते थे। वर्ण व्यवस्था जन्म से ही मानी जाती थी, जिसमें रुक्मिणी द्वारा भेजे गये विप्रवर के सम्मान एवं आदर सत्कार के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उस समय ब्राह्मणों का समाज में पूज्यनीय स्थान था और ब्राह्मण भी शान्त, दान्त, दयालु और सत्कर्मों में आसक्त थे। तत्कालीन समय भी क्षत्रिय प्रधान था। राज्यकार्य एवं राष्ट्ररक्षा इन दोनों महत्वूपर्ण कार्यों के अधिष्ठाता क्षत्रिय ही होते थे। इसी प्रकार वैश्यों की स्थिति भी श्लाघनीय हुआ करती थी, परन्तु शूद्र भी समाज निर्माण में महत्वूपर्ण भूमिका निभाते थे। इस प्रकार कविवर ने आश्रम व्यवस्था का भी सम्यक् चित्रण प्रस्तुत किया है। इनकी साहित्यिक रचना में धार्मिक विचारों का व्यवहारिक रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। इनके काव्यमयी भाषित महाकाव्य में सामाजिक रहन-सहन खान-पान, वेशभूषा संस्कार आदि समस्त संस्कारों का प्रतिपादन किया गया है। रुक्मिणी हरण नामक रचना द्वारा राजनैतिक स्थिति का भी ज्ञान होता है, जिसमें राज्य संगठन मन्त्रिमण्डल प्रधानामात्य सैन्य संगठन आदि व्यवस्थाओं की ओर संकेत कविवर ने सुदृढ़ता के साथ उद्धृत किया है। कवि ने सांस्कृतिक गतिविधियों पर भी सूक्ष्मतम दृष्टि डालते हुए शिष्टाचार तथा स्वयंवर का भी महत्वूपर्ण पक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कविवर भारतीय संस्कृति के अप्रतिम समर्थक रहे हैं। ये सदैव अुनशासन युक्त राजनैतिक व्यवस्था का स्मरण अपने

महाकाव्य में दिलाते रहे हैं। भारतीय सांस्कृतिक आचरणीयता से भरपूर यह रचना अपनी विशिष्टता को शुरू से अन्त तक लिये रही है, जिससे कविवर की यह रचना उज्जवल, रोचक एवं सम्पूर्णता से व्याप्त होती हुई धीर गम्भीर वाणी युक्त वाक्यों से परिपूर्ण तथा अत्यन्त ही मार्मिक एवं स्वाभाविक है।

समासतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तुत महाकाव्य संस्कृत साहित्य रसिकों के लिए अवश्य उपादय, महत्वपूर्ण एवं माननीय तो है ही साथ ही संस्कृत शब्द प्रयोग के लिए शिशिक्षुओं के लिए भी परम उपादेय एवं वरदान स्वरूप हैं। साथ ही समसामयिक युग को समाज एवं संस्कृति का सम्पर्क परिज्ञान कराने में भी यह महाकाव्य एवं साधनभूत सहायक है। इसके महत्वपूर्ण अंशो को उच्च शिक्षा के व्यापक क्षेत्रों में विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम में निर्धारित कर इस अप्रतिम ग्रन्थ को प्रतिष्ठा देनी चाहिए। जिससे सामान्य अध्येता अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्य की उत्कृष्टतम से सुपरिचित होकर लाभन्वित हो सकें और आधुनिक भारतीय लोक जीवन के साथ ही विविध शास्त्रीय ज्ञान-विज्ञान को भी हृदयंगम कर सकें।

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

१. **महाभारत** - *सं० रामनारायण पाण्डेय,* गीता प्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण।

२. **शिशुपाल वध (माघकृत)**- *सं० पं० हरगोविन्द शास्त्री,* चौ० सं० सी० वाराणसी, द्वितीय संस्करण।

३. **रुक्मिणीहरण महाकाव्य**- *पं० काशीनाथ शर्मा,* "सुधीसुधानिधि" प्रथम संस्करण, सं० २०३३।

४. **रुक्मिणीमंगलम् (महाकाव्य)** - *महाकवि भट्ट,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

५. **श्री मद्भागवत पुराण**- *सं० रामनारायण पाण्डेय,* गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण।

६. **विष्णु पुराण**- *सं० रामनारायण पाण्डेय,* गीताप्रेस गोरखपुर, प्रथम संस्करण।

७. **हरिवंश पुराण**- *पं० रामतेज शास्त्री,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, प्रथम संस्करण

८. **देवी भागवत पुराण**- *सं० रामतेज शास्त्री,* चौ० सं० सी० वाराणसी, प्रथम संस्करण।

९. **ब्रह्म पुराण**- आनन्द आश्रम पूना, प्रथम संस्करण।

१०. **स्कन्ध पुराण**- आनन्द आश्रम पूना, प्रथम संस्करण।

११. **पद्म पुराण**- आनन्द आश्रम पूना, प्रथम संस्करण।

१२. **अग्नि पुराण**- आनन्द आश्रम पूना, प्रथम संस्करण।

१३. **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण**- आनन्द आश्रम पूना प्रथम संस्करण।

१४. **गर्गसंहिता**- *सं० श्री रामतेज शास्त्री,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, प्रथम संस्करण।

१५. **काव्य प्रकाश**- *आचार्य विश्वेश्वर,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण।

१६. **साहित्य दर्पण-** डा० सत्यव्रत सिंह, चौ० सं० प्र० वाराणसी, १६६७ ई०।

१७. **बृत्त रत्नाकर-** *(केदारभट्ट) आचार्य बलदेव उपाध्याय,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, १६६२।

१८. **नैषधीय चरितम्-** *सं० बदरी नारायण मिश्रा,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, प्रथम संस्करण।

१६. **किरातार्जुनीयम्-** *सं० बदरी नारायण मिश्रा,* चौ०सं०प्र० वाराणसी, प्रथम संस्करण।

२०. **काव्यालंकार सूत्र-** *राजेन्द्र प्रसाद कोठ्यासी,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, प्रथम संस्करण।

२१. **काव्यमीमांसा-** *सं० डा० श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी,* चौ० सं० प्र० वाराणसी, द्वितीय संस्करण।

सन्दर्भ ग्रन्थ

२२. **पुराण पर्यालोचनम्-** *डा० श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी,* वाराणसी, १६८६।

२३. **पुराण परिशीलनम्-** *म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी,* पटना, प्रथम संस्करण।

२४. **पुराण विमर्श-** *आचार्य बलदेव उपाध्याय,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

२५. **पौराणिक आख्यान-** *गंगासागर राय,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

२६. **पौराणिक कथाएँ-** *हृदयराम शर्मा,* वाराणसी प्रथम संस्करण।

२७. **संस्कृत आलोचना-** *आचार्य बलदेव उपाध्याय,* लखनऊ।

२८. **छन्दोऽलंकार मंजरी-** *डा० कैलाशनाथ द्विवेदी,* कानपुर १६६६।

२६. **संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-** *डा० कपिल देव द्विवेदी,* इलाहाबाद, १६६७।

३०. **संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास-** *डा० कैलाशनाथ द्विवेदी,* इटावा १६७६।

३१. **लेखाञ्जलि-** *डा० कैलाशनाथ द्विवेदी,* साहित्य रत्नालय, कानपुर १६६२।

३२. **अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया-** *भाण्डारकर,* पुणे, प्रथम संस्करण।

३३. **हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर-** *विटंरनित्ज,* भाग प्रथम, दिल्ली, प्रथम संस्करण।

३४. **संस्कृत साहित्य का इतिहास-** *कीथ,* मो० बनारसीदास, दिल्ली, १६६६।

३५. **काव्य मीमांसा-** *केदारनाथ सारस्वत,* बिहार राजुमाला-पटना, प्रथम संस्करण।

३६. **काव्य मीमांसा-** *डा० श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

३७. **History of Sanskrit pietics, Part I,** *S.K. De*, Calcutta, I Edition.

३८. **संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-** *डा० रामजी उपाध्याय,* इलाहाबाद, १६६६।

३६. **Modern Sanskrit Writing (Vol, I, II)** *Dr. V Raghwan,* Madras/ Delhi, I Edition

४०. **वैदिक निबन्धावली-** *डा० मुंशीराम शर्मा,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

४१. **निरुक्त-** *प्रो० उमाशंकर शर्मा,* ऋषि, वाराणसी, प्रथम संस्करण।

४२. **Some concept of the Alankarshartra,** *V. Raghwan,* Adyar 1942.

४३. **शतपथ ब्राह्मण-** वैदिक संशोधन मण्डल पुणे, प्रथम संस्करण।

४४. **नाट्य शास्त्र (I, II तथा III)-** पं० मधुसूदन शास्त्री, वाराणसी, प्रथम संस्करण।

४५. **अभिनव भारती-** ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, प्रथम संस्करण।

४६. **काव्यालंकार सूत्र वृत्ति-** डा० नरेश झा, वाराणसी, द्वितीय संस्करण।

४७. **अलंकार सर्वस्तम्-** *रुय्यक,* मुम्बई, प्रथम संस्करण।

४८. **काव्यालंकार शास्त्र-** *डा० पारस नाथ द्विवेदी,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

४६. **A classical History of Sanskrit Literature-** *Krishnanaachari* Calcutta-I

५०. **A History of Sanskrit Literature-** *A macdonell-* Delhi 1966 I

५१. **काव्यालंकार सूत्र- (कामधेनु टीका)** *हरगोविन्द शास्त्री,* वाराणसी १६६१।

५२. **राजतरंगिणी-** *रघुनाथसिंह,* दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

५३. **ध्वन्यालोक-** *अभिनव गुप्त - व्याख्याकार- पं० जगन्नाथ पाठक,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

५४. **लोचनटीका-** *हेमचन्द्र,* मणिभ्यचन्द्र संकेत, सं० मैसूर।

५५. **काव्यप्रकाश-** *वामनाचार्य,* मुम्बई, प्रथम संस्करण।

५६. **रसगंगाधर-** *आचार्य बदरीनाथ, आचार्य मदनमोहन झा,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

५७. **काव्यालंकार-** *रुद्रट, सं० डा० नरेश झा,* वाराणसी, प्रथम संस्करण।

५८. **पं० काशीनाथ शर्मा "सुधीसुधानिधि"-** *डा० शिववालक द्विवेदी एवं सुशीला पाण्डेय,* ग्रन्थम, कानपुर प्रथम।

५६. **साहित्यानुशासन-** *आचार्य सीताराम चतुर्वेदी,* वाराणसी १६६०।

६०. **संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण-** *डा० उमेश प्रसाद रस्तोगी,* विद्याभवन, ग्रन्थमाला, वाराणसी।

६१. **संस्कृत साहित्येतिहासः-** *आचार्य रामचन्द्र मिश्रा,* विद्याभवन ग्रन्थमाला, वाराणसी।

६२. **अर्वाचीन संस्कृत साहित्य-** *डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर,* पुणे, प्रथम।

कोश ग्रन्थ

संस्कृत वाड्.मय कोशः (भाग प्रथम, द्वितीय) *डा० श्रीधर भास्कर वर्णेकर,* कलकत्ता, १६८६।

अमर कोश- *पं० भानु जी दीक्षित,* वाराणसी, १६८७।

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ- *पं० द्वारकानाथ शर्मा,* इलाहाबाद, १६६६।

महाभारतीय संस्कृति कोश- *डा० राम जी उपाध्याय,* वाराणसी/सागर- १६७०।

अंग्रेजी संस्कृत कोश- *आप्टे-* नाग पब्लिशर्स, दिल्ली।

अमरकोश- *पं० देवदत्त तिवारी-* दिल्ली प्रथम।

शोध पत्र पत्रिकाएं

संस्कृत साहित्य कोश - *डा० राजवंश सहाय "हीरा",* वाराणसी, प्रथम।

अजस्रा- (३/४ अंक १६८०) *सं० डा० अशोक कुमार कालिया,* लखनऊ, १६८०।

सागरिक- (१६/३ अंक) *सं० डा० राम जी उपाध्याय,* सागर/वाराणसी, १६८१।

अर्वाचीन संस्कृतम्- *डा० रमाकान्त शुक्ल,* दिल्ली।

Journal of deptt. of letters iv vol- Calcutta.

Journal of R. A. Society- Colombo 1892,